ग्रामीण महिलाओं में पशुपालन एवं गृहवाटिका द्वारा उद्यमिता का विकास

138

अमतुल वारिस
अरूण कुमार शर्मा
आलोक चन्द माथुर
प्रताप नारायण

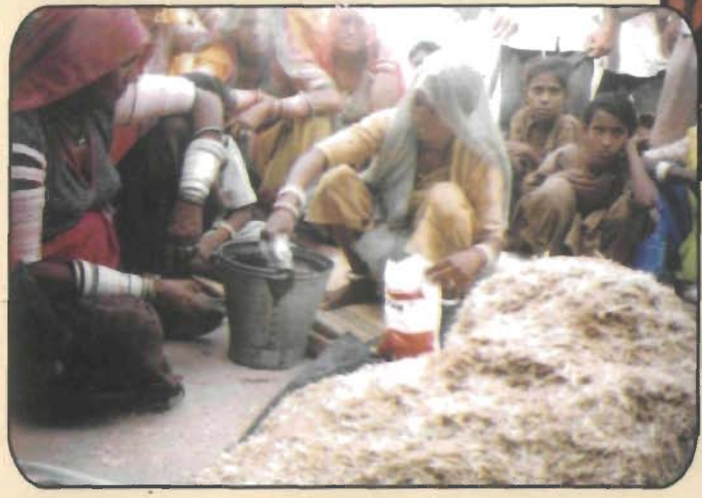

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
जोधपुर

ग्रामीण महिलाओं में पशुपालन एवं गृहवाटिका द्वारा उद्यमिता का विकास

अमतुल वारिस

अरूण कुमार शर्मा

आलोकचंद माथुर

प्रताप नारायण

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान

जोधपुर 342003

प्रकाशक :

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान

(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)

जोधपुर – 342003

नवम्बर 2004

मुद्रक :

एवरग्रीन प्रिण्टर्स

14–सी, हैवी इण्डस्ट्रीयल एरिया,

जोधपुर

प्राक्कथन

महिलाओं का कृषि में योगदान महत्वपूर्ण है जिसका आंकलन यद्यपि कठिन है किन्तु इस बात की आवश्यकता है कि इस योगदान को कृषि में निर्णय की भागीदारी दे कर, सार्वभौम स्वीकृति होनी चाहिए। इस स्वीकृति का इन्तजार किये बगैर ग्रामीण महिलाओं को स्वयं में उद्यमिता के गुण विकसित करने की आवश्यकता है और इसकी शुरूआत घर से ही हो सकती है। शुष्क क्षेत्रों में पशुपालन एक ऐसा व्यवसाय है जिससे प्रतिदिन आमदानी हो सकती है पशुपालन का अधिकांश कार्यभार महिलाएं ही करती है और पशुपालन उद्यमिता विकास के लिए सर्वोत्तम व्यवसाय है। शुष्क क्षेत्रों में फल–सब्जी की कमी के कारण बच्चों और महिलाओं में पोषण की कमी पाई जाती है । गृह वाटिका में अपनी इच्छानुसार फल–सब्जी लगाकर न केवल परिवार का स्वास्थ्य अच्छा रखा जा सकता है वरन् महिलाओं की आय में बढ़ोतरी होने से निर्णय लेने की क्षमता का विकास भी हो सकता है। इसी प्रकार कृषि–कचरे से वर्मीकम्पोस्ट, फल–सब्जी का परिरक्षण कर विक्रय करने से न केवल अतिरिक्त आय हो सकती है वरन् महिलाओं में उद्यमिता का गुण विकसित करने में भी सहायक हो सकता है।

मुझे प्रसन्नता है कि राष्ट्रीय कृषि तकनीक परियोजना के अन्तर्गत, उपरोक्त सभी उद्देश्यों को ध्यान में रखकर "ग्रामीण महिलाओं में पशुपालन एवं गृहवाटिका द्वारा उद्यमिता का विकास" नामक कार्य–पुस्तिका का प्रकाशन किया जा रहा है। यह कार्य–पुस्तिका निश्चय ही ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक स्वावलम्बन में सहायक होगी और बच्चों एवं महिलाओं को कुपोषण से बचाने में भी सहायक होगी ।

डा. प्रताप नारायण

जोधपुर, 2004

निदेशक

प्रस्तावना

कृषि क्षेत्र में महिलाओं का योगदान 50–60 % तक माना जाता है किन्तु इस योगदान से महिलाओं को आर्थिक स्वायत्तता और खेती या व्यवसाय में निर्णय लेने की क्षमता विकसित नही हो पाती है। इस प्रकार महिलायें सिर्फ श्रमिक की भूमिका में कार्य करती है । यदि महिलाएं कृषि प्रबन्धन में निर्णय भी कर सकने में सक्षम हो तो न केवल कृषि वरन् ग्राम की अर्थव्यवस्था में स्थायित्व व सुधार होने की संभावना बहुत बढ़ जाती है।

पशुपालन, बारानी और सिंचित दोनों क्षेत्रों में चल सकने वाला पारंपरिक व्यवसाय है । पशुपोषण व पशुओं के स्वास्थ्य के बारे में वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त कर महिलाएं इसे प्रतिदिन आमदनी का व्यवसाय बना सकती है साथ ही पशुपालन के उप–उत्पाद जैसे गोबर का सदुपयोग भूमि की उर्वरता बढ़ाने में भी सहायक हो सकता है।

गृह वाटिका एक ऐसा स्थान है जहॉ से ग्रामीण महिलायें न केवल फल–सब्जी–औषधीय पौधों को उगाकर परिवार को सम्पूर्ण स्वास्थ्य दे सकती है वरन् इसी गृह वाटिका में खेती सम्बन्धी प्रयोग कर अपना आत्मविश्वास बढ़ा सकती है। इसी प्रकार ग्रामीण घरेलू उद्योग की शुरूआत कर ग्रामीण महिलायें न केवल परिवार की आय बढ़ा सकती है वरन् आसपास उपलब्ध संसाधनों का सदुपयोग कर सकती है जैसे बेकार पड़े खेत के कचरे और गोबर में उचित विधि से केचुऐं द्वारा बहुत अच्छी गुणवता वाली खाद या वर्मीकम्पोस्ट बनाई जा सकती है जिसके उपयोग से गृहवाटिका में पौष्टिक फल–सब्जी मिल सकते हैं साथ ही खाद को बेचकर अच्छी आय भी मिल सकती है। इसी प्रकार घर की छत से वर्षा का शुद्ध जल संगृहित कर उसका उपयोग पीने व पौधे उगाने में किया जा सकता है। अपने खेत या गृह वाटिका में पैदा हुए फल–सब्जियों का अचार, मुरब्बा, जैम आदि उत्पाद बनाकर परिरक्षण किया जा सकता है और इसे अच्छे पैकिंग में बेचने से आय भी प्राप्त हो सकती है। इसी प्रकार गृह वाटिका में औषधीय पौधों से छोटे–छोटे रोगों का प्राथमिक घरेलू उपचार संभव हो सकता है।

उपरोक्त सभी आयामों को ध्यान में रखकर इस कार्य पुस्तिका का सरल भाषा में प्रकाशन का प्रयास किया गया है। आशा है यह ग्रामीण महिलाओं में आत्मविश्वास व उद्यमिता का विकास करने में सहायक होगी। राष्ट्रीय कृषि तकनीक परियोजना के महिला सशक्तिकरण कार्यक्रम में मिले आर्थिक सहयोग व निदेशक काजरी के मार्ग निर्देशन से इस कार्य पुस्तिका का प्रकाशन हेतु आभार प्रस्तुत किया जाता है।

अमतुल वारिस
अरूण के. शर्मा
आलोक चन्द माथुर

विषय सूची

क्र.सं	आलेख	पृष्ठ संख्या
1.	शुष्क क्षेत्रों में पशुपालन का महत्व	1
2.	डेयरी द्वारा महिलाओं में उद्यमिता विकास	5
3.	शुष्क क्षेत्र में दुधारू पशुधन प्रजातियों में प्रजनन की दिशाएं व पशुधन की प्रमुख नस्लें	7
4.	शुष्क क्षेत्र में पशु पोषण प्रबन्धन	12
5.	शुष्क क्षेत्र में चारा उत्पादन तकनीकियां	16
6.	चारे की पौष्टिकता बढ़ाने हेतु उपचार विधियां	21
7.	प्राथमिक पशु चिकित्सा	25
8.	गृह वाटिका का महत्व	29
9.	गृह वाटिका में उपयोगी सब्जियां	34
10.	गृह वाटिका में उपयोगी औषधीय पौधे	38
11.	गृह वाटिका में जल प्रबन्धन	42
12.	केंचुआ खाद (वर्मीकम्पोस्ट) का उत्पादन और उपयोग	47
13.	गृह वाटिका में पौध संरक्षण	49
14.	खाद्य परिरक्षण द्वारा आय उपार्जन	53

शुष्क क्षेत्रों में पशुपालन का महत्व

डॉ. प्रताप नारायण

हमारे देश में कुल रेगिस्तानी क्षेत्र (317 लाख हेक्टेयर) में से लगभग 62 प्रतिशत (19.6 हे.) क्षेत्र राजस्थान के 12 पश्चिमी जिलों में स्थित है जिसमें तेज गर्मी, कम एवं अनिश्चित वर्षा, आंधी तथा तेज हवाओं का प्रभाव रहता है। साथ ही जमीन भी कम उर्वरक क्षमता तथा कम पानी रोकने की क्षमता वाली है। इन सभी कारणों से देश के इस भू–भाग में अकाल पड़ना आम बात है। पांच वर्षो के चक्र में केवल एक वर्ष ही सामान्य वर्षा वाला होता है, दो वर्ष सामान्य से कम वर्षा वाले तथा बाकी दो वर्ष अनिश्चित वर्षा वाले होते है। इस कारण इन क्षेत्रों में फसल उत्पादन अनिश्चित तथा कम विश्वसनीय हो जाता है तथा पशु–उत्पादन पर निर्भरता बढ़ने लगती है। प्राकृतिक रूप से इन रेगिस्तानी क्षेत्रों में देश के सर्वोत्तम नस्ल के गाय, भेड़, बकरी, ऊँट तथा घोड़े पाये जाते है। गायों की थारपारकर, राठी, कांकरेज (सांचोरी), गिर तथा नागोरी नस्ल, बकरियों की मारवाड़ी, सिरोही झकराना नस्ल, भेड़ों की मारवाड़ी नाली चोकला तथा जैसलमेरी नस्ल, ऊँटों की बीकानेरी एवं जैसलमेरी नस्ल तथा घोड़ों की मालानी नस्ल इन्हीं रेगिस्तानी जिलों में पाई जाती है। इसी कारण अकाल एवं कम वर्षा वाले सालों में पशुपालन से होने वाली विश्वसनीय आमदनी ही किसानों की मदद करती है। इस प्रकार पशुपालन इस क्षेत्र को ग्रामीण अर्थव्यवस्था में विशेषकर कम वर्षा वाले वर्षों में स्तम्भ या मेरूदण्ड का कार्य करती है। पूरे राजस्थान राज्य में भी कुल घरेलू सफल उत्पाद का 19 प्रतिशत हिस्सा पशुपालन से मिलता है। पूरे देश का 10 प्रतिशत दुग्ध उत्पाद 30 प्रतिशत मांस उत्पादन एवं 40 प्रतिशत ऊन उत्पाद राजस्थान से ही होता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि कम वर्षा या अकाल वर्ष में कृषि उत्पादन घट कर 10 प्रतिशत या उससे भी कम हो जाता है जबकि पशुपालन से उत्पादन 50 प्रतिशत तक हो जाता है। पिछले महाकाल (वर्ष 2002) के समय में दुग्ध उपलब्धता तथा बिक्री अन्य सामान्य वर्षो के मुकाबले कम होने की जगह काफी बढ़ गई थी जिससे पशुपालन से होने वाली आमदनी में विश्वसनीयता आसानी से समझी जा सकती है।

रेगिस्तानी क्षेत्रों में विभिन्न पशु प्रजातियों की स्थिति – रेगिस्तानी क्षेत्रों में पशु संख्या में वर्षो से लगातार वृद्धि हो रही है। सन् 1956 में रेगिस्तानी जिलों में कुल 134 लाख पशु थे जो कि वर्ष 2000 तक बढ़कर लगभग 285 लाख हो गये। पिछले दशक में पूरे राजस्थान राज्य में पशु संख्या 33 प्रतिशत बढ़ी जबकि रेगिस्तानी जिलों में 61 प्रतिशत बढ़ी। इन जिलों में 100 मनुष्यों के मुकाबले 124 पशु हैं जबकि समूचे राजस्थान राज्य में यह संख्या 96 तथा पूरे देश में यह संख्या कुल 40 है। अनुमानों के अनुसार जैसलमेर जैसे आदि रेगिस्तानी क्षेत्रों में यह संख्या 200–300 तक जा सकती है। इन आंकड़ों से भी रेगिस्तानी क्षेत्रों में पशुपालन का महत्वता का आभास होता है।

अनुमानों के अनुसार वर्ष 2010 तक इन क्षेत्रों में कुल पशु संख्या 295 लाख हो सकती है जिसमें से 43 लाख गायें, 32.5 लाख भैंस, 109 लाख भेड़, 104 लाख बकरी तथा 6.6 लाख ऊँट अनुमानित है। इस प्रकार सन् 1956 से सन् 2010 तक अनुमानतः विभिन्न पशु प्रजातियों की संख्या वृद्धि में भैंसे सबसे अधिक

322 प्रतिशत, बकरी 197 प्रतिशत, भेड़ 131 प्रतिशत, ऊंट 83 प्रतिशत तथा गायें सबसे कम 10 प्रतिशत संख्या में बढ़ी/बढ़ेगी। अतः पिछले 54 सालों में गायों की कुल संख्या तथा उनका घनत्व विभिन्न इलाकों में लगभग वही रहा जबकि भैसों की संख्या आश्चर्यजनक रूप से बढ़ी है। गायों की संख्या सिंचित क्षेत्र में विशेषतौर से घटी है जो कि चिन्ता का विषय है। ऊंटों की संख्या में कम वृद्धि परिवहन के अन्य सुविधाजनक साधनों की उपलब्धता होने के कारण है। वास्तव में रेगिस्तानी क्षेत्रों में राजस्थान के अन्य क्षेत्रों के मुकाबले केवल भेड़ एवं ऊँट ही अधिक घनत्वता में है साथ ही प्रति यूनिट क्षेत्र में चारे की उपलब्धता रेगिस्तानी क्षेत्रों में अन्य क्षेत्रों के मुकाबले काफी कम है। रेगिस्तानी क्षेत्रों में भैंसों की बढ़ती जनसंख्या उत्तरी एवं दक्षिण–पश्चिम रेगिस्तानी जिलों में सबसे अधिक है जहां पर इंदिरा गांधी नहर के कारण सिंचित क्षेत्र बढ़ रहा है। पुराने समय में रेगिस्तानी क्षेत्रों गायों की अधिक संख्या का कारण था उस समय गायों को चराई के लिये उपलब्ध चराई क्षेत्र जो कि वर्तमान में धीरे–धीरे कम होकर कृषि हेतू काम में लिया जा रहा है। इसी कारण इन क्षेत्रों में गायों की संख्या निरन्तर कम होती जा रही है। अर्थात गायों को आरम्भ से ही न्यूनतम खर्चे से पालना इन क्षेत्रों में माना जाता है जबकि भैंसों को चराई हेतू न भेजा जाकर पशुशाला में ही खिलाया–पिलाया जाता है। इस कारण चारागाह क्षेत्रों में गायों की संख्या निरंतर कम एवं भैंसों की संख्या बढ़ रही है। ऐसा विश्वास है कि अधिक खर्चा करके भैंसों से गायों के मुकाबले अधिक लाभ होता है इसी कारण समय–समय पर होने वाले अकाल का असर भैंसों के मुकाबले गायों पर अधिक होता है एवं प्रत्येक अकाल के बाद गायों की संख्या कम हो जाती है। वास्तव में अधिक उत्पादन वाली गायें एवं भैंसों को पशुशाला में ही चारा और दाना खिलाकर पाला जाता है जबकि कम उत्पादन वाली गायें एवं भेड केवल चारागाह में ही चराई पर निर्भर रहती है। बकरी एवं ऊँट ऊंची झाड़ियों एवं पेड़ की पत्तियों पर निर्भर रहते है। ऊंट ऊंचाई पर स्थित पत्तियां जबकि बकरी कम ऊंचाई की झाड़ियों पर अधिक निर्भर रहते है। इस प्रकार विभिन्न प्रजाति के पशु आपसी संतुलन से प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करते है।

चारे की आवश्यकता – यह अनुमान है कि वर्ष 2010 तक इस क्षेत्र में 308 लाख टन सूखे चारे की तथा 84 लाख टन चारा पत्तियो की प्रति वर्ष आवश्यकता होगी। दुग्ध उत्पादन बढ़ाने हेतु कुल चारे की आवश्यकता में से लगभग 40–45 लाख टन हरे चारे के रूप में उपलब्ध होना चाहिये। क्षेत्र में प्रति सामान्य वर्ष चारे की उपलब्धता 40 प्रतिशत कम रहती है जो कि अकाल के वर्षा में बढकर 80–90 प्रतिशत तक हो जाती है जिसके कारण हमें पड़ौसी राज्यों से चारा मंगाना पड़ता है।

बदलते परिप्रेक्ष्य में भू–उपयोग व्यवस्था – पिछले कुछ दशकों में राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्रों में भू–उपयोग में बदलाव आ रहा है। 1960 के दशक के मुकाबले 2010 के दशक में अनुमानित है कि कुल खेती क्षेत्र 39 प्रतिशत से बढ़कर 54 प्रतिशत हो जायेगा यह बढ़ोतरी बढती जनसंख्या के दबाव के कारण बंजर भूमि, चारागाह, परत भूमि एवं अन्य भूमि की कमी से ही संभव हो पाई है। साथ ही वन क्षेत्र में तो वृद्धि हो रही है परन्तु चारागाह/ओरण लगातार सुकड़ते जा रहे है। दुर्भाग्यवश क्षेत्र में अधिक चारा मिलने वाली फसलों जैसे बाजरा, दलहनी फसल, जौ एवं चने के क्षेत्र में कमी आ रही है जबकि

अधिक लाभ देने वाली फसलों जैसे मूंगफली, ज्वार, कपास, गेहूं एवं रायड़े के क्षेत्र में वृद्धि हो रही है।

उपरोक्त बदलाव के कारण क्षेत्र में चारे की कुल उपलब्धता कम हो रही है। जबकि पशु संख्या निरंतर बढ़ रही है। इस विरोधाभास के कारण चारे की कमी लगातार बढ़ती जा रही है। दूसरी ओर बढ़ती हुई जनसंख्या के बावजूद मनुष्यों हेतु अनाज उत्पादन बढ़ने पर भी जोर दिया जा रहा है। साथ ही कमी वाले क्षेत्रों में अनाज पहुंचाना चारा पहुंचाने के मुकाबले काफी आसान है। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि इस क्षेत्र में अधिक क्षेत्र में चारा उत्पादन किया जाये। साथ ही अपने प्राचीन गोचर एवं ओरण का सुधार एवं नियंत्रण किया जाये। इस हेतु 20–25 प्रतिशत क्षेत्र में केवल चारा उत्पादन ही किया जाये। साथ ही चारे का समुचित संरक्षण किया जाये। दुर्भाग्यवश हम चारे के उत्पादन बढ़ाने एवं संरक्षण की बात केवल अकाल के समय पर करते है बाद में सुकाल आने पर इन्हें भूल जाते है। यही वास्तविक चारे की कमी का मुख्य कारण है। इस मूल मंत्र के क्रियान्वयन में किसानों एवं सरकार दोनों का ही योगदान आवश्यक है।

पशुपालन में महिलाओं की भागीदारी – इस क्षेत्र में ग्रामीण महिलायें ही डेयरी पालन संबंधी अधिकतर कार्य करती है। अतः डेयरी विकास कार्यक्रम में ग्रामीण महिलाओं का योगदान महत्वपूर्ण है। इसी विचार के अंतर्गत महिला एवं बाल विकास विभाग के अंतर्गत भारत सरकार ने वर्ष 1991–92 में विशेषतौर पर राजस्थान महिला डेयरी विकास कार्यक्रम को राज्य के सात जिलों में चलाने हेतु स्वीकृति प्रदान की। यह जिले हैं भरतपुर, जयपुर, पाली, जोधपुर, बीकानेर एवं बांसवाडा। कार्यक्रम की सफलता को देखते हुए वर्तमान में इसे राज्य के अन्य जिलों में भी चलाया जा रहा है।

इस कार्यक्रम के अंतर्गत निम्नलिखित गतिविधियां चलाई जा रही हैं :–

I. महिलाओं हेतु रोजगार कार्यक्रम जैसे सिलाई, फल संरक्षण आदि

II. प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत महिला शिक्षा कार्यक्रम

III. महिला सहकारी समिति संचालन एवं आदान सेवाऐं – दुग्ध संकलन, पशुआहार, कृत्रिम गर्भाधान, पशु स्वास्थ्य सेवाएं, प्रशिक्षण आदि

IV. स्वास्थ्य एवं स्वच्छता सेवायें – टीकाकरण एवं ग्रामीण स्वच्छता

V. जागरूकता एवं सूचना प्रसार–'जाजम' की स्थापना, ग्रामीण महिला आमुखीकरण आदि

राजस्थान महिला डेयरी विकास कार्यक्रम का संचालन संबंधित जिला दुग्ध उत्पादक सहकारी संघ के अंतर्गत किया जाता है। राजस्थान सहकारी डेयरी फेडरेशन तथा संबंधित संघ इन महिला समितियों को आवश्यक सुविधायें, कच्चा माल विक्रय सुविधा तथा उचित बाजार उपलब्ध कराता है जिससे इन समितियों के अंतर्गत महिला समूह कारगर रूप से काम कर सके तथा कार्यक्रम के खत्म होने के पश्चात भी महिला समिति सफल रह सके।

महिला डेयरी विकास कार्यक्रम के अंतर्गत क्रियाशील महिलाओं को आवश्यकतानुसार विभिन्न विषयों में प्रशिक्षण सुविधा दिलाई जाती है जैसे उन्नत पशुपालन तकनीकियां, चारा उत्पादन, दुग्ध उत्पादक सहकारी समिति का संचालन, उद्यमिता विकास, महिला अधिकारों के प्रति जागृति एवं ज्ञान आदि जिससे उनमें सामाजिक एवं आर्थिक संपन्नता आ सके।

अतः महिला दुग्ध उत्पादक सहकारी समिति ग्रामीण महिलाओं में विकास एवं जागृति पैदा करने का केन्द्र बन चुकी है जिसमें केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध सुविधायें अहम भूमिका निभाती है। इस समिति के माध्यम से ग्रामीण महिलायें राज्य में कार्यरत महिला विकास कार्यक्रम से सीधे जुड़ जाती है। इस समिति के माध्यम से ग्रामीण महिलायें स्वयं अपनी कमाई कर धन संचय कर सकती है जिसे वह बाद में अपनी आवश्यकतानुसार अपने परिवार के विकास पर खर्च कर स्वयं को गौरवान्वित महसूस कर सकती है।

यह प्रशिक्षण पशुपालन तथा डेयरी विकास के तहत महिलाओं के अकाल वर्ष में आय के स्त्रोत का विकास करने के वास्ते किया गया था। इससे सूखे से लड़ने की क्षमता और महिलाओं में विश्वास और स्वयं निर्णय लेने की क्षमता का विकास करने के उद्देश्य से किया गया था। गुजरात की भांति राजस्थान में भी पशुपालन और डेयरी विकास सूखे से मुकाबला करने की क्षमता प्रदान करने में सक्षम होगा ।

डेयरी द्वारा महिलाओं में उद्यमिता का विकास

डॉ. (श्रीमती) ऊषा रानी

भारत देश प्रारम्भिक काल से ही एक कृषि प्रधान देश के रूप में पहचाना जाता है। यहां कृषि के साथ ही पशुपालन की परम्परा एक सहायक व्यवसाय के रूप में प्रचलित है। राजस्थान राज्य के मरू भू–भाग में तो पशुपालन का विशेष महत्व आंका गया है। क्योंकि जहां एक तरफ यहां की भौगोलिक परिस्थितियां एवं अपर्याप्त वर्षा जैसे प्रतिकूल कारणों से कृषि में सदैव अनिश्चितता बनी रहती है, वहीं दूसरी तरफ राज्य की सकल आय में 12 प्रतिशत योगदान पशुपालन से प्राप्त होता है। मुख्यतः राज्य के शुष्क क्षेत्रों में कृषि उत्पादन बहुत ही कम तथा अनिश्चित होने के कारण आय उपार्जन का अन्य प्रमुख स्त्रोत पशुपालन ही है। यहां के पशुधन में प्रमुख रूप से भेड़, बकरी, गाय, ऊँट, गधे जैसे पशुओं की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। देश के अन्य मरूस्थलीय प्रदेशों की तुलना में यहां मानव एवं पशु अनुपात अधिक पाया जाता है। यहां प्रति व्यक्ति 5 से 6 पशु अनुपात आँका गया है। अतः कहा जा सकता है कि पशुपालन राज्य के शुष्क प्रदेश के लिए रोजगार के साथ–साथ आय का भी एक प्रमुख स्त्रोत है। पशुपालन कार्य में वैसे तो पुरूष, महिला तथा बच्चों का योगदान रहता है, लेकिन पशुपालन से संबंधित अधिकांश कार्य महिलाओं द्वारा ही किये जाते है। देश–विदेश में किए गए कई अध्ययनों से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है कि पशुपालन में महिलाओं की भागीदारी 90 प्रतिशत से भी अधिक पायी जाती है। कुछ विशेष कार्यों को छोड़कर, पशुपालन संबंधित अधिकांश कार्य महिलाओं द्वारा ही किये जाते हैं। जैसे पशुओं के लिए चारा लाना, चारा खिलाना, पानी पिलाना, दूध निकालना, दूध का रखरखाव करना, पशु बाड़े की साफ–सफाई करना आदि कार्य महिलाओं द्वारा ही किये जाते हैं। इसी भांति एक–दूसरे पहलू से यह भी ज्ञात हुआ कि पशु–दुग्ध उत्पादन से जितना लाभ पशुपालक को मिलना चाहिए, वो नहीं प्राप्त हो रहा है। इसका सबसे बड़ा कारण सम्भवतः दूध का उचित मूल्य नहीं मिलना तथा दूध की मांग की अनिश्चितता बनी रहना हो सकते हैं, क्योंकि अधिकांशत जब पशुधन द्वारा दूध की उत्पादन मात्रा में वृद्धि होती है, तो दूध आपूर्ति की मांग अपेक्षाकृत कम हो जाती है। परिणाम स्वरूप दुग्ध उत्पादकों को इस समय दूध का उचित मूल्य प्राप्त नहीं हो पाता है। अतः ऐसी परिस्थितियों में आवर्श्यक है कि दूध उत्पादन को एक व्यवसाय के रूप में परिवर्तित कर लिया जाए। पशुपालन कार्यों में महिलाओं के विशेष योगदान के कारण सरकार ने महिलाओं के लिए डेयरी कोपरेटिव संस्थाएँ संचालित की जा रही है। इन संस्थाओं के माध्यम से दूध क्रय किया जाता है और उसका उचित भुगतान किया जाता है। इसके अतिरिक्त ये संस्थाएं इस व्यवसाय से संबंधित समुचित जानकारी तथा पशु दुग्ध उत्पादन के साधन भी प्रदान करती है। जैसे – पशुओं की दवाईयां, सन्तुलित पशु आहार, पशुओं के उचित रखरखाव की जानकारी आदि। इसके अतिरिक्त डेयरी कोपरेटिव संस्थाओं द्वारा महिलाओं हेतु भांति–भांति के कल्याणकारी कार्यक्रमों का आयोजन भी किया जाता है। इसी सन्दर्भ में छितूर दुग्ध विपणन केन्द्र में किए गए एक अध्ययन को प्रस्तुत किया जा सकता है। इस अध्ययन में पाया गया कि महिलाओं द्वारा संचालित इस दुग्ध विपणन केन्द्र में महिलाओं की पशु दुग्ध उत्पादन द्वारा आय उपार्जन तथा

पशु–दुग्धउत्पादन में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। दुग्ध की निश्चित मांग ने महिलाओं को पशु–दुग्ध उत्पादन के लिए प्रोत्साहित किया और उन्होंने देशी गायों की जगह संकर नस्ल की गाय रखना शुरू कर दिया। अध्ययन के परिणाम बताते है कि जहां केवल 2.62 प्रतिशत ही संकर गाय थी अब वो बढकर 71.72 प्रतिशत हो गई तथा इसके फलस्वरूप दूध का उत्पादन 106 प्रतिशत बढ़ गया और दुग्ध विपणन 150 प्रतिशत बढ़ गया। इससे स्पष्ट है कि महिलाओं को दुग्ध उत्पादन से पहले की अपेक्षा अधिक आय होने लगी है तथा छोटे किसान जो कि पशुपालन पर ही अधिक निर्भर रहते हैं, उनके लिए यह कोपरेटिव संस्थाएं आय स्त्रोत के रूप में वरदान सिद्ध हो रही है।

अतः इस अध्ययन से ये निष्कर्ष निकलता है कि महिला कोपरेटिव सोसायटी से जहां दुग्ध उत्पादन द्वारा आय में वृद्धि होती है तथा इसका उत्पादन बढ़ता है वहीं गरीबी उन्मूलन में भी इनकी भूमिका बहुत सकारात्मक रही है।

डेयरी कोपरेटिव के सकारात्मक परिणामों को देखते हुए राजस्थान में भी इस दिशा में एक डेयरी विकास का कार्यक्रम चलाया गया, ये कार्यक्रम अमूल (गुजरात डेयरी कोपरेटिव) को आधार मानकर 1972–73 में शुरू हुआ जिसमें दुग्ध उत्पादकों को सहकारी संस्था द्वारा जोड़ा गया। ये सहकारी संस्था गांवों से दुग्ध खरीदती है तथा पशुपालकों को दुग्ध उत्पादन के लिए जरूरी साधन जैसे पशु आहार, दवाईयां तथा तकनीकी जानकारी उपलब्ध करवाती है। ये सब दुग्ध उत्पादक सहकारी संस्थाएं राज्य स्तर की संस्था से जुड़ी है जिसे राजस्थान कोपरेटिव डेयरी फैडरेशन के नाम से जाना जाता है। इस संस्था के निम्नलिखित उद्देश्य है।

(1) दुग्ध उत्पादकों से उचित मूल्य पर दूध खरीदना।

(2) दुग्ध उत्पादन के साधन एवम् नई तकनीक उपलब्ध करवाना।

(3) महिला कोपरेटिव सोसायटी बनवाना तथा उसके लिए डेयरी के साथ–साथ दूसरे विकास कार्य भी करना।

इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि जैसा कि प्रमाणित हो चुका है कि पशुपालन में महिलाओं की भागीदारी पुरूषों से अधिक है परन्तु फिर भी उनको इसका लाभ नहीं मिलता। अतः विशेष रूप से महिलाओं की सहकारी संस्थाएं बनाकर राजस्थान डेरी महिलाओं के लिए अन्य रोजगार के साधन उपलब्ध करवाती है, दुग्ध उत्पादन के अतिरिक्त आय अर्जित करने के अन्य स्त्रोत निकालती है। उनकी शिक्षा तथा सेहत के लिए सुविधाएं उपलब्ध करवाती है। ये कहा जा सकता है कि महिला के सम्पूर्ण विकास में कोपरेटिव डेयरी का बहुत बड़ा योगदान हो सकता है। अतः ये प्रस्तावित किया जा सकता है कि राज्य के मरू क्षेत्र में जहां डेयरी आय का एक मुख्य स्त्रोत है इसे एक व्यवसाय के रूप में लिया जाना चाहिए और महिलाओं को डेयरी कोपरेटिव का सदस्य बनकर लाभ लेना चाहिए तब ही उनमें उद्यमिता का विकास हो सकता है।

शुष्क क्षेत्र में दुधारू पशुधन की प्रमुख नस्लों में प्रजनन की दिशाएं

डॉ. ए. के. पटेल

पशुपालन राजस्थान के शुष्क व अर्धशुष्क क्षेत्र का एक प्रमुख व्यवसाय है। गाय, भैंस, बकरी आदि इस व्यवसाय के मुख्य दुधारू प्रजाति के पशु है। राजस्थान के कुल दुग्ध उत्पादन का 37.0, 52.4 व 10. 6 प्रतिशत दुग्ध क्रमशः गाय, भैंस एवं बकरी से उत्पन्न होता है। उपरोक्त तीन दुधारू प्रजातियो में गाय एवं भैंस प्रमुख पशु है। जबकि बकरी का योगदान मुख्यतः राज्य के मांस उत्पादन में है। यद्यपि राज्य के शुष्क क्षेत्र में गाय की अच्छी नस्ले जैसे थारपारकर, कांकरेज, राठी आदि पायी जाती है। परन्तु फिर भी दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से भैंस पालन अब निरन्तर बढ़ता जा रहा है क्योंकि पिछले चार दशकों में भैंसों की संख्या मरु क्षेत्र में 309 प्रतिशत बढ़ी है। जबकि गायों की संख्या उतने ही समय में मात्र 26. प्रतिशत बढ़ी है। इतनी बड़ी पशु संख्या होने के बावजूद भी प्रति पशु दुग्ध उत्पादन बहुत कम है क्योंकि इस क्षेत्र में कुल प्रजनन योग्य पशुओं उत्पादन में है। कुल वयस्क प्रजनन योग्य पशुओं में से में से 48. 7 प्रतिशत गायें व 60.5 उत्पादन में है । अतः इस क्षेत्र में दुग्ध उत्पादन वाले पशुओं का अनुपात दुग्ध न देने वाले पशुओं की तुलना में बढ़ा दिया जावे तो कुल दुग्ध उत्पादन में काफी वृद्धि हो सकती है।

राजस्थान में पाये जाने वाली दुधारू गायों की नस्लें

1. थारपारकार :

यह नस्ल थारी, सिंधी आदि नामों से भी जानी जाती है। इस नस्ल का मूल स्थान दक्षिण–पूर्वी सिन्ध (पाकिस्तान) का शुष्क–अर्द्ध रेगिस्तानी क्षेत्र है हमारे यहां यह नस्ल जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर जिलों में पायी जाती है।

इस नस्ल के पशु बहुत मजबूत तथा कम आहार पर निर्वाह करने वाले होते हैं। ये विपरीत परिस्थितियों को सहन करने वाले, सूखा तथा दुर्भिक्ष के आदि होते हैं। ये पशु सुगठित, मजबूत, घूसर–सफेद रंग के होते है। इनका सिर मध्यम आकार का होता है ललाट चौडा जो नेत्रों के ऊपर थोड़ा उभरा होता है। नेत्र बड़े–बड़े व शान्त होते है। कान लम्बे एवं चौड़े लटकने वाले होते हैं। सींग दूर–दूर स्थित होते हैं। नरों के सींग छोटे–मोटे तथा सीधे होते हैं। नरों का ककुद सामान्यतः पूर्ण विकसित होता है। गल कम्बल ढीला, लचकदार तथा मध्यम आकार का होता है। पैर मध्यम आकार के मजबूत व सुंदर होते हैं। पूंछ काले धब्बे युक्त टखनों तक लटकती हुई होती है। गायों का अयन बडा, सुविकसित जो आगे पीछे पूरी तरह फैला रहता है। दुग्ध शिराए प्रमुख तथा थन लम्बे मोटे तथा समान आकार के दूर–दूर स्थित होते हैं। त्वचा सुंदर मुलायम तथा सफेद रंग की होती है। सांड की गर्दन, ककुद तथा पैर गहरे रंग के होते हैं। इस नस्ल की गायें 3–4 वर्ष की उम्र में प्रथम बार ब्याती है। 305 दिनों का उत्पादन 1400–1800 लीटर व दो ब्यांत का अंतराल 1 से 1.5 वर्ष के बीच होता है।

राठी : ये पशु अलवर के उत्तरी पश्चिमी भाग तथा राजपूताने के दक्षिण क्षेत्र में पाये जाते है। इन क्षेत्रों के अतिरिक्त यह नस्ल बीकानेर, नागौर तथा मेवाती नस्लों के साथ भी पाई जाती है। इनका शरीर आकार में अपेक्षाकृत कुछ छोटा होता है। इनके पुट्ठे मजबूत और पूंछ ऊंची होती है। वातावरण के प्रति सहनशील तथा कम चारे पर गुजारा करने वाले होते हैं। इनका रंग सफेद या भूरा होता है। नरों की गर्दन व कंधे गहरे रंग के होते हैं। कुछ पशु लाल तथासफेद व लाल चित्तीदार भी होते हैं। छाती अपेक्षाकृत छोटी, मजबूत तथा गहरी होती है। माथा चपटा होता है। शरीर लम्बा होता है। टांगे छोटी–छोटी मॉसल होती हैं। राठी नस्ल की गाये औसतन 3.5 से 4 वर्ष की आयु में प्रथम बार ब्या जाती है एवं इसका दुग्ध उत्पादन 331 दिनों में 1931 लीटर पाया गया। इसकी दो ब्यांतों के मध्य 19 महिनों का अंतर पाया गया।

कांकरेज : इस नस्ल के पशुओं को गुजराती, वाधिर, साँचौरी, वदिवाल, बधियार इत्यादि नामों से भी जाना जाता है। इसका मूल स्थान कच्छ के रन का दक्षिणी – पूर्वी भाग माना जाता है। यह क्षेत्र थारपारकार जिले के दक्षिण–पश्चिमी कोने से लेकर दक्षिण में अमद नगर तक, पूर्व में डीसा से लेकर पश्चिमी में भूतपूर्व राघनपुर रियासत तक फैला हुआ है।

भारत की सबसे भारी नस्ल के रूप में मशहूर कांकरेज भारत की सर्वोत्तम गायों की जातियों में से एक है। इस नस्ल के पशु बड़े शक्तिशाली तथा भारी कार्य के लिए उपयुक्त होते हैं। इनका आकार बड़ा, ललाट चौड़ा तथा मध्य में थोड़ा सा दबा हुआ होता है। इनके सींग मोटे–लम्बे जो थोड़े बाहार की ओर बढ़कर फिर ऊपर की ओर बढते हैं तथा फिर भीतर की ओर मुड़ जाते हैं। पशुओं की छाती चौड़ी, पीठ सीधी, ककुद विकसित, मुतान लटकने वाला तथा टखनों के नीचे तक लटकती हुई काले झब्बे युक्त पूंछ होती है। अयन बड़ा जो सामने की ओर बड़ा तथा पीछे की ओर छोटा होता है। पशु उत्साही तथा बलिष्ठ होते हैं। जो अजनबियों के सामने भड़क उठते हैं। बैल शक्तिशाली, हल चलाने तथा भारवाहन के लिए बहुत अच्छे समझे जाते हैं।

कांकरेज नस्ल की गाये 4 साल तक की उम्र पर प्रथम बार ब्याती है। इसका दुग्ध उत्पादन 351 दिनों में 1850 लीटर आंका गया है। यह 1.25 से 1.5 वर्ष के अंतराल से ब्याती है।

बकरी की प्रमुख नस्ले : हमारे देश के विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में बकरियों की 20 शुद्ध नस्ले पायी जाती हैं। जिसमें तीन नस्ले मारवाड़ी, सिरोही एवं झकराना राजस्थान प्रदेश की प्रमुख नस्ले मानी जाती हैं।

मारवाड़ी : यह नस्ल राजस्थान के शुष्क व रेगिस्तानी क्षेत्र में पाई जाती है। यह राज्य के जोधपुर, पाली, नागौरी, बीकानेर, जालोर जैसलमेर व बाड़मेर जिलों में पाई जाती है। यह मध्यम आकार की लम्बे काले बालों से ढकी होती है। जो मरूस्थलीय जलवायु में भी खूब पनपती है। इसका रंग काला व सभी बालों का ऊपर से तांबे जैसा रंग होता है। कान चपटे, मध्यम आकार के तथा नीचे की ओर लटके होते हैं। इनके सींग छोटे, नुकीले तथा पीछे की ओर मुड़े हुए होते हैं। इनके व्यस्क नर एवं मादा का भार

औसतन क्रमशः 38 व 30 किग्रा होता है। यह एक बहुकाजीय नस्ल है जो दूध, मांस व बालों के लिए पाली जाती है। ये बकरिया एक ब्यात (180 दिनों) में लगभग 100 लीटर तक दूध देती हैं तथा साल में एक बार ब्याती है। वैसे तो यह नस्ल एक बार में एक ही बच्चा देती है परंतु यदि अच्छी खिलाई पिलाई हो तो यह दो बच्चे एक साथ भी दे सकती है। वर्ष भर में नर व मादा बच्चों का औसतन वजन 20 व 16 किग्रा तक हो जाता है।

सिरोही : यह नस्ल राजस्थान के अरावली पहाड़ियों में व इसके आस–पास मध्य राजस्थान से दक्षिण राजस्थान तक पाई जाती हैं। यह गठीले आकार की मध्यम ऊंचाई वाली बकरी है। इसका रंग गहरे से हल्का भूरा होता है। कभी–कभी इस पर हल्के व गहरे रंग के भूरे धब्बे भी पाये जाते हैं। इस नस्ल में गले के नीचे कलंगी (मांसल भाग) होती है। जिसमें इस नस्ल की पहचान की जाती है। इनके कान पत्ती की तरह चपटे व नीचे की ओर झुके रहते हैं। इनके सींग छोटे घुमावदार व ऊपर की ओर मुड़े हुए होते हैं। इसके व्यस्क नर व मादा का शरीर भार क्रमशः 50 व 34 किग्रा तक होता है। यह नस्ल दूध व मांस हेतु पाली जाती हैं। शुष्क जलवायु में ये बकरियां अच्छा उत्पादन करती हैं। यह 180 दिनों के दुग्धकाल में 140 लीटर तक दुग्ध देती हैं। यह साल भर में एक ही बच्चा देती हैं। इनमें 20–25 प्रतिशत तक जुड़वाँ बच्चे देने की क्षमता होती है। एक साल में इसके नर व मादा बच्चे 24 व 18 किग्रा तक वजन के हो जाते हैं।

जखराना : इस नस्ल की बकरियाँ राजस्थान के अलवर जिले के बेहरोड़ तहसील तक सीमित हैं जो अरावली पर्वत श्रृंखला में स्थित है। इनकी संख्या काफी कम है। ये आकार में बड़ी तथा काले रंग की होती हैं। इनके मुंह व कानों पर सफेद रंग के धब्बे पाये जाते हैं। इनका सिर संकरा व उठा हुआ होता है तथा कान चपटे व मध्यम आकार के होते हैं। इनके व्यस्क नर व मादा का शरीर भार क्रमशः 51 एवं 44 किग्रा होता है। यह एक द्विकाजी नस्ल है। ये 115 दिनों के दुग्धकाल में 121 लीटर तक दूध देती है। तथा वर्ष भर में इसका औसतन शरीर भार 18 किग्रा तथा नर में 22 किग्रा तक पहुंच जाता है।

भैंसों की प्रमुख नस्लें : भैंस मुख्य रूप से भारत तथा पाकिस्तान में ही पाई जाती हैं। भारत को भैंस की सबसे अच्छी तथा दुधारू नस्ल रखने का गौरव प्राप्त है। भारत में भैंसों की कुल दुधारू 7 नस्ले जैसे मुर्रा, नीलीरावी, जाफरावादी, मेहसाना, सूरती, नागपुरी, व भदावरी पाई जाती हैं। राजस्थान में हरियाणा की मुर्रा व गुजरात की सूरती नस्ल की भैंसे पाई जाती हैं। पसंद के हिसाब से मुर्रा जाति के ज्यादा जानवर पाये जाते हैं।

मुर्रा : इस नस्ल का मूल स्थान दिल्ली तथा हरियाणा के रोहतक, हिसार, करनाल, जींद, गुड़गांव जिलों को माना जाता है। पशुओं का रंग काला स्याह, लेकिन पूंछ का झब्बा सफेद तथा माथे पर सफेद टीका होता है। इस नस्ल की भैंस विश्व में सबसे अधिक दूध देने वाली मानी जाती है। इनके सींग विशेष रूप से मुड़े हुए कुण्डलाकार होते हैं। इस नस्ल के पशुओं का सिर छोटा परंतु नरों में स्थूल और भारी होता है। ललाटा चौड़ा होता है। कान छोटे, पतले तथा निलम्बी होते हैं। पैर छोटे सीधे तथा खुर काले

होते हैं। मादा में आगे का हिस्सा हल्का तथा पतला तथा पीछे का भारी होता है। इनका शरीर त्रिकोणात्मक होता हैं। पीठ लम्बी, चौड़ी जो सामने की ढालू और पतली होती है। पूंछ टखनों तक लटकती, सफेद झब्बे वाली होती है। पूर्ण विकसित अयन, टेढ़ी–मेढ़ी दुग्ध शिराएं, लम्बे–लम्बे दूर–दूर थन, पीछे के थन कुछ बड़े, त्वचा पतली, मुलायम और चिकनी होती है। दुग्ध उत्पादन 305 दिनों में औसतन 2300 लीटर तक होता है। दुग्ध में वसा की मात्रा 7–8 प्रतिशत तक होती है। पहली बार 4–5 वर्ष में ब्याती है। 1.5 से 2 वर्षों में ब्याने का अंतराल होता है।

सूरती : यह मध्य आकार की भैंस है। इसका मूल स्थान गुजरात का चरोत्तर प्रदेश और बडौदा के आस–पास का क्षेत्र है। इस नस्ल के शुद्ध वंशीय पशु आन्नद, नाड़ियाड़ और खैरा में मिलते हैं। सूरती भैंस देखने में सुंदर, रंग साधारणतः काली अथवा भूरी होती है। इस नस्ल के भैंसों का शरीर मध्यम आकार का सुव्यवस्थित होता है। पेट आगे पतला, पीछे भारी होता है। सिर लम्बा, चौड़ा जो सींगों के बीच में गोलाकार होता है। पीठ सीधी होती है। आंखे उभरी तथा चमकदार होती है। सींग मध्यम लम्बाई के चपटे तथा हंसिये के आकार के होते है। पूंछ सफेद गुच्छे युक्त लम्बी होती है। दूध व मक्खन की दृष्टि से यह भैंस अच्छी होती है। 300 दिन के ब्यांत में औसतन दुग्ध उत्पादन 1857 किग्रा तक रहता है। जिसमें 8–9 प्रतिशत तक वसा की मात्रा पाई जाती है।

शुष्क क्षेत्र में अधिक दुग्ध उत्पादन के लिये पशु प्रजनन योजना

यद्यपि राज्य का मरु क्षेत्र विभिन्न पशुओं की अच्छी नस्लों का पैतृक स्थान रहा है फिर भी समय के साथ पशुओं की नस्लों की शुद्धता में कमी आयी है। फलस्वरूप अवर्णित नस्ल के जानवर कई गुना अधिक पाये जाते है। इसका कारण है पशुओं की नस्लों के बरकरार रखने पर ध्यान ना देना जिसकी वजह से पशुओं की उत्पादन क्षमता कम होती जा रही है। अतः पशुओं से अधिक उत्पादन हेतु एवं उनकी नस्लों को संरक्षण करने के लिये निम्न पशु प्रजनन नीतियों पर ध्यान देना चाहिये।

(1) चयनित प्रजनन द्वारा दुधारू व द्विकाजी नस्ल के पशुओं के प्रजनन क्षेत्र में सुधार।

(2) देशी, अवर्णित अथवा कम दूध देने वाली गायों की मरु क्षेत्र की दुधारू नस्लों जैसे थारपारकार, राठी आदि से नस्ल सुधार।

(3) जिन क्षेत्रों में अच्छा चारा–दाना पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो और अन्य अनिवार्य सुविधाएं जैसे पशु चिकित्सा केन्द्र, कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र आदि उपलब्ध है वहां पर देशी व अवर्णित गायों को विदेशी नस्ल के प्रयोग कर संकर नस्ल के पशु पैदा करना।

(4) भैसों को उनके क्षेत्र में चयन क्रिया द्वारा सुधारना एवं देशी भैंसों को उस क्षेत्र की अच्छी नस्ल वाली भैंसों से सुधारना।

ग्रामीण परिस्थितियों में दुधारू पशुओं की नस्लों में सुधार

हमारे प्रदेश के शुष्क व अर्धशुष्क क्षेत्र में पशुधन की अच्छी नस्लें पायी जाती है जिसमें दुधारू गाय की प्रमुख 3 नस्लें थारपारकार, राठी, कांकरेज़ एवं एक भारवाही नस्ल; नागौरी पायी जाती है। मारवाडी, सिरोही एवं झकराना बकरियों की तीन प्रमुख नस्लें हैं। जबकि भैंसों में मुर्रा नस्ल सबसे अधिक पायी जाती है जो मूल रूप से हरियाणा राज्य की नस्ल है। उपरोक्त उपलब्ध पशु नस्लों के बावजूद भी हमारे यहां ज्यादातर पशु अवर्णित प्रकार के है जिनकी कोई नस्ल निश्चित नहीं है। अवर्णित प्रकार के पशुओं की दुग्ध उत्पादन क्षमता कम होती है। इन परिस्थितियों में दुग्ध उत्पादन में सुधार उन्नत किस्म के बकरे व सांड आदि के प्रयोग से किया जा सकता है। प्रजनन व्यवस्था के लिये नर व मादा दोनों का चयन आवश्यक है। पशुओं का चयन करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये।

(1) नर पशु के माता–पिता शुद्ध नस्ल के रहे हों तथा वह स्वयं शारीरिक रूप से चुस्त एवं दुरुस्त हों।

(2) माता–पिता में उच्च प्रजनन एवं जनन क्षमता रही हो उनकी संततियों में नर एवं मादा का अनुपात वांछित रहा हो।

(3) वांछित उत्पाद जैसे दूध, माँस या रेशे की उत्पादकता क्षमता उच्च स्तरीय रही हो।

(4) उच्च उत्पादन क्षमता का समय लम्बा रहा हो और कुल जीवनकाल की उत्पादित मात्रा काफी उच्च रही हो।

(5) नर में अपने गुणों की छाप अपनी सन्तानों में छोड़ने की उच्च क्षमता हो।

(6) नर पूर्णरूपेण स्वस्थ एवं किसी आनुवांशिक बीमारी से ग्रसित या उसका वाहक न हो। उसके विकसित जननांग हो एवं प्रजनन क्षमता अच्छी हो।

शुष्क क्षेत्र में पशु पोषण प्रबन्धन

डॉ. बी.के. माथुर

पशुधन मरू क्षेत्र की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य स्तम्भ है। पारम्परिक ज्ञान एवं अनुभव के अनुसार यहां पर पशुपालन आधारित कृषि कार्य को ही महत्व दिया जाता है।

मरू क्षेत्र में मुख्यतः वर्षा आधारित कृषि होती है और क्योंकि यहां वर्षा कम, अनियमित होने के कारण खेती की सम्भावनायें बहुत ही कम तथा इससे प्राप्त लाभांश भी साधारणतय कम ही होता है। यहां अकाल आम बात है, केवल फसल खेती पर निर्भर नहीं रहा जा सकता है। इन परिस्थितियों में पशुधन कृषक के जीविकोपार्जन का मुख्य स्त्रोत है, इसीलिये पशुपालन मरू ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधारभूत हिस्सा है। सन् 1997 की पशु गणनानुसार राजस्थान में कुल 543.8 लाख पशुधन है, जबकि केवल मरू क्षेत्र के 12 जिलों में 286.0 लाख पशुधन है।

यहां पर पाये जाने वाली पशुओं की प्रजातियों ने इस शुष्क क्षेत्र के अनुरूप स्वयं को ढाल लिया है। इसी गुण के कारण मरूस्थलीय प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखने वाली यहां की पशु नस्ल सर्वोत्तम मानी जाती है।

गाय	–	थारपारकर, राठी, काकरेज व. नागौरी
भेड़	–	चोकला, नाली, मारवाड़ी, मगरा, पुगल, सोनाडी व जैसलमेरी
बकरी	–	मारवाड़ी व परबतसरी
ऊँट	–	बीकानेरी व जैसलमेरी

पशुपालन के मुख्य व्यवसाय के अतिरिक्त गांवों व शहरों में बहुत लोग पशु द्वारा प्रदत्त उत्पादनों के व्यवसाय में संलग्न है। जैसे ऊन, दूध, खाल आधारित व्यवसाय इत्यादि। देश की कुल ऊन उत्पादन का 40 प्रतिशत भाग राजस्थान के मरूस्थलीय क्षेत्रों से ही प्राप्त होता है। इसी तरह दुग्ध उत्पादन भी यहां अत्यधिक होता है। यह एक गर्व की बात है कि दुग्ध, मांस एवम अन्य पशु उत्पादनों में मरू क्षेत्रों का भारतवर्ष में अत्यधिक योगदान है।

विज्ञान की दृष्टि से पशुपालन की तीन मुख्य शाखाऐं है :

1. पोषण
2. प्रजनन
3. स्वास्थ्य

पशु पोषण व्यवस्था : पशु उत्पादन में पशु पोषण का बहुत महत्व है। पशुपालन में कुल खर्चे का

70 प्रतिशत, पशु की खिलाई पर होता है। अतः पशुओं को सदैव आवश्यकतानुसार संतुलित पोषण उपलब्ध होना चाहिये जिससे वह लगातार उत्पादन दे सके। पूर्ण व संतुलित पोषण के अभाव मे ये पशु अपने अनुवांशिक क्षमता के अनुसार उत्पादन नहीं कर सकते है। प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि यदि यहां के पशुओं को पूर्ण आवश्यकतानुसार पोषण दिया जाये तो इन पशुओं के उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। शर्करा, प्रोटीन, वसा, लवण व विटामिनस आवश्यक मूल पोषक तत्व है व इन सबके उपयोग व पाचन के लिये पानी अतिआवश्यक होता है।

पौषक तत्व निम्न खाद्य पदार्थ के संतुलित मिश्रण द्वारा पशुओं को उपलब्ध कराये जा सकते है।

1. अनाज (सिरीयलस) : बाजरा, गेहूं – चापड़, ज्वार, जौ, मक्की
2. खल : तिल बीज खल, कपास खल, रायड़ा बीज व तुम्बा बीज खल
3. दालें (लेगयूमस) : ग्वार, चना चूरी, मूंग–मोठ कोरमा इत्यादि
4. घास एवम चारा : सेवण, धामण, बाजरा कुतर, ज्वार कड़वी इत्यादि। कृषि के सह उत्पाद पेड के पत्ते इत्यादि।

भेड, बकरी व गाय के लिये मरूस्थली क्षेत्र में वनस्पति वर्षा काल में स्वतः उग आती है व मुख्यतः मौसमी या एक वर्षीय पौधे होते है जो कि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहते है। कुछ स्थानों पर बहुवर्षीय घास भी इस क्षेत्र में पाई जाती है जो कि पशु आहार के लिये सर्वोतम है, पर यह घास जैसे कि सेवण, धामण इत्यादि अब बहुत कम जगहों व कम मात्रा में पाई जाती है। बहुवर्षीय घास की पोषकता पकने पर धीरे–धीरे कम होती जाती है विशेषकर प्रोटीन, पक्की हुई घास की पाचकता भी कम हो जाती है। स्वाभाविक तौर से बकरियां झाड़ियों व पेड इत्यादि के पते जैसे बोरडी, खेजड़ी, कुमट, केर के फूल, अरडु, नीम, पीपल, सरेस, जाल व इजरायली बबूल इत्यादि चाव से खाती है। यह पशु को पौष्टिक आहार प्रदान करते है। खेजड़ी–बोरडी की पत्तियों को बाटे मे मिलाकर दुधारू भेड, बकरी व गाय को देना ज्यादा पौष्टिक व लाभदायक रहता है।

गायों का संतुलित पोषण : गायों को सदैव संतुलित आहार खिलाना चाहिये। यहां पर संतुलित का आशय मूल पोषक तत्वों को पशु की आवश्यकतानुसार खिलाना है। यह पोषक तत्व है : शकर्रा (कार्बोहायड्रेट), प्रोटीन, वसा, लवण एवम् विटामीनस। पानी पोषक तत्वों के उपयोग के लिये अतिआवश्यक है। पशुओं से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिये आवश्यक है संतुलित पौष्टिक आहार। प्रत्येक पशु को प्रति 100 किलो भार पर साधारणतया 2.5 से 3.0 किलो शुष्क आहार की आवश्यकता होती है। राजस्थान में एक गाय का औसतन शारीरिक भार 300 किलोग्राम आंका जाता है। अतः इन्हें 7.5 से 9.0 किलोग्राम शुष्क पदार्थ बांटे व चारे से उपलब्ध करना चाहिये। शुष्क पदार्थ का तात्पर्य है आहार में उपस्थित जल की पूर्ण मात्रा को सूखाकर जो आहार शेष रह जाता है। कुल शुष्क पदार्थ आहार का एक तिहाई (1/3) भाग बांटे से व दो तिहाई (2/3) भाग चारे से देना चाहिये। सामान्यतः बांटे, खल,

चुरी, धान इत्यादि में 85–90 प्रतिशत, सूखे चारे में 75 से 85 प्रतिशत व हरे चारे; रिजका, ज्वार कड़बी इत्यादि में 15 से 35 प्रतिशत तक औसतन शुष्क पदार्थ होता है।

उदाहरण :

I. आहार शुष्क पदार्थ आवश्यकता प्रतिदिन : 2.5 से 3.0 कि.ग्रा. प्रति 100 कि.ग्रा. शारीरिक भार

II. गाय : ओसतन शारीरिक भार 300 कि.ग्रा.

III. शुष्क पदार्थ देना है : 7.5 से 9.0 कि.ग्रा.

IV. माना शुष्क पदार्थ देना है : 7.5 किलो

V. गाय को देना है 1/3 बांटे से शुष्क पदार्थ : 2/3 चारे से शुष्क पदार्थ

अतः 2.5 किलो ग्रा. बांटे से 5.0 किलो ग्रा. चारे से

VI. कुल चारा 5.0 किलो ग्राम

1/3 हरा : 2/3 सूखा

1.5 किलो ग्रा. शुष्क पदार्थ (उपलब्धता पर) : (3.5 किलो ग्रा. शुष्क पदार्थ)

VII. अतः 1. 2.5 कि.ग्रा. शुष्क पदार्थ बांटे के लिये देना होगा : 3.0 कि.ग्रा. बांटा।

2. 1.5 कि.ग्रा. शुष्क पदार्थ हरे चारे के लिये देना होगा : 6 से 10 कि.ग्रा. हरा चारा।

3. 3.5 कि.ग्रा. शुष्क पदार्थ सूखे चारे के लिये देना होगा : 4 से 4.5 कि.ग्रा. सूखा चारा।

VIII. पशुओं के लिये संतुलित बांटा निम्नलिखित खाद पदार्थ या अन्य (उपलब्धता के आधार पर) को मिलाकर तैयार किया जाना चाहिये।

1. खल	:	तिल/मूंगफली/कंपास/तुम्बा/रायड़ा	20–30 भाग
2 चापड़	:	गेहूँ/चावल	30–50 भाग
3. चूरी	:	ग्वार/चना/अन्य दाल	15–20 भाग
4. धान	:	जौ/मक्का/बाजरी	15–20 भाग
5. खनीज लवणों का मिश्रण			1 भाग
6. नमक			1 भाग

IX. हर पशु की शारीरिक रखरखाव एवं उत्पादन हेतु आवश्यकतानुसार सूखे चारे के अलावा बांटा निम्न

प्रकार से दिया जाना चाहिये :–

1. दूध न देने वाली गायों को 2 से 2.5 किलो प्रतिदिन

2. दुधारू गायों को	–	2.5 कि.ग्रा. प्रतिदिन के अलावा, प्रति तीन लीटर दूध उत्पादन पर 1 कि.ग्रा. बांटा
3. ग्याभिन एवम पहली ब्यात को	–	एक कि.ग्रा. बांटा अतिरिक्त देना चाहिये
4. गाय जो प्रतिदिन दस लीटर से अधिक दूध दे	–	एक कि.ग्रा. अतिरिक्त बांटा देना चाहिए

अन्य जानकारी हेतु निकटतम पशु चिकित्सालय से सम्पर्क करें।

कुछ अतिआवश्यक उपचार/जानकारियां :

आन्तरिक व बाह्य परजीवी रोग उपचार : वर्ष में कम से कम दो बार आंतरिक परजीवी नाशक दवा (ऐलबेनडाजोन/फेनबेनडाजोल/कलोसनटल इत्यादि) पशु को अवश्य दें। इससे पशु स्वस्थ रहेगा एवम् पोषक तत्वों की पशु के लिये उपलब्धता भी बढ़ेगी।

लवण मिश्रण खिलाना : पशुओं को बांटे में लवण मिश्रण एक प्रतिशत के अनुपात में अवश्य दे व एक प्रतिशत साधारण नमक भी खिलाना चाहिये। यह करने से पशुओं में विभिन्न आवश्यक लवणों की कमी नहीं होगी जिससे उत्पादन अच्छा होगा व निरन्तर बना रहेगा।

विटामीन ''ए'' की आवश्यकता : पशु के आहार में विटामीन ''ए'' होना अनिवार्य है। हरे चारे से पशु अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर लेता है। यदि पशु को हरा चारा उपलब्ध नहीं होता है जो कि मरू क्षेत्र में आम बात है तो पशु विटामीन ''ए'' की कमी के रोग से ग्रस्त हो जाता है। अतः प्रत्येक 2–3 महिने बाद पशु को विटामीन ''ए'' का इंजेक्शन (विटेड/विटासेप्ट) अवश्य लगाना चाहिये।

शुष्क क्षेत्र में चारा उत्पादन तकनीकियां

डॉ. एम. पाटीदार

राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में पशु पालन किसानों की आय का एक मुख्य स्त्रोत है। अपर्याप्त वर्षा एवं सूखे से यहां फसल उत्पादन बहुत कम होता है। इसलिए यहां के किसानों को पशुपालन पर निर्भर रहना पड़ता है। इस क्षेत्र में डेयरी विकास की प्रबल संभावना है। जिसके लिए दूध उत्पादन में स्थिरता एवं वांछित वृद्धि करना अत्यंत आवश्यक है। दूध का उत्पादन बढ़ाने के लिए अच्छी नस्ल के पशुओं के साथ उनके लिए संतुलित एवं पौष्टिक आहार की आवश्यकता होती है। पौष्टिक आहार में हरे चारे का बड़ा महत्व है। परंतु शुष्क क्षेत्र में अच्छी वर्षा के समय पर भी 60 प्रतिशत चारे की कमी रहती है तथा यह कमी अकाल एवं सूखे के समय और भी बढ़ जाती है। इसलिए यहां पर अपर्याप्त वर्षा के कारण न केवल दुग्ध उत्पादन प्रभावित होता है, वरन पशुओं की मृत्युदर भी बढ़ जाती है। इन परिस्थितियों में उपलब्ध संसाधनों से सिंचित, असिंचित एवं समस्याग्रस्त भूमियों पर उचित चारा उत्पादन तकनीक से अधिक चारा प्राप्त किया जा सकता है ।

चारा फसलें एवं उत्पादन तकनीक :-

असिंचित क्षेत्रों में मुख्य रूप से खरीफ ऋतु में बाजरा, ज्वार कुरा, ग्वार, चवला, मोठ एवं मूंग से अनाज के साथ-साथ चारा भी प्राप्त हो जाता है। अच्छा एवं अधिक मात्रा में चारा प्राप्त करने के लिए उन्नत किस्मों के बीज का उपयोग करें। साथ ही समय पर बुवाई, खाद एवं उर्वरक, नमी संरक्षण एवं कटाई का भी ध्यान रखना चाहिए। केवल चारे के लिए फसल बोना हो तो बीज की मात्रा ज्यादा रखनी चाहिए तथा मानसून की पहली बरसात के साथ बुवाई कर देनी चाहिए। ज्वार बाजरा के साथ चवला या ग्वार के बीजों को मिलाकर बुवाई करने से चारे की गुणवत्ता बढ जाती है। हरे चारे के लिए इन फसलों को फूल आते समय काटना चाहिए तथा ज्वार को बुवाई के 45–50 दिन बाद काटना चाहिए। जहां पर सिंचाई की सुविधा हो, हरा चारा वर्ष भर प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए अलग-अलग फसलों को मौसम के अनुसार आवश्यक सस्य क्रियाएं अपनाकर उगाना चाहिए। जुलाई से अक्टूबर तक ज्वार, बाजरा, मक्का, जई, चवला एवं ग्वार की फसलों को उगाना चाहिए। इसके बाद सर्दी में रिजका, बरसीम, जई एवं जौ की फसल ली जा सकती है। जहां पर पानी कम हो जौ एवं जई उगाना चाहिए। इसके अलावा जौ की खेती क्षारीय व लवणी भूमियों पर या खारे पानी पर भी सफलतापूर्वक की जा सकती है। फरवरी से जून तक दुबारा बाजरा, ज्वार, चवला एवं कूरी की फसल को चारे के लिए बोया जा सकता है। इस समय पानी की आवश्यकता अधिक होती है। जहां पर पानी अधिक मात्रा में उपलब्ध हो, रिजका एवं बरसीम की खेती की जा सकती है। इन फसलों से अधिक एवं पौष्टिक चारा मिलता है। बरसीम को 4–5 बार एवं रिजका को 6–8 बार काटा जा सकता है। पहली कटाई बुवाई के 50 दिन बाद करते हैं तथा अगली कटाई 25–30 दिनों के अंतराल पर करनी चाहिए। बरसीम, रिजका, जौ एवं जई के साथ दो किलोग्राम प्रति हेक्टर की दर से जापानी सरसों या चाईनीज कैबेज

के बीज मिलाकर बोने से पहली कटाई में शीघ्र एवं अधिक चारा मिलता है। इन फसलों के अच्छे जमाव के लिए पलेवा करके बुवाई करें या बुवाई के तुरंत बाद सिंचाई कर देवें। बाकि सिंचाईया गर्मियों में 10–12 दिन तथा सर्दियों में 15–20 दिन के अंतराल पर करें । अच्छे चारे की फसल के लिए बुवाई के समय 8–10 टन अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद खेत से मिला देवें और आवश्यकतानुसार उर्वरकों की सारणी 1 में दी गई मात्रा का प्रयोग करें। बरसीम, रिजका, ग्वार चवला की फसलों में उर्वरकों की समस्त मात्रा का प्रयोग बुवाई के समय करें। ज्वार, मक्का, बाजरा की फसलों में आधी नत्रजन तथा फास्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई के समय दे शेष आधी नवजन की मात्रा फसल बुवाई के 35–40 दिन बाद प्रयोग करे। जई एवं जौ में नत्रजन की आधी एवं फास्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई के समय तथा शेष नत्रजन की आधी मात्रा को बुवाई के 30–35 दिन बाद एवं आधी को पहली कटाई के बाद डाले।दलहनी फसलों (बरसीम, चवला, ग्वार, रिजका) को उपयुक्त राईजोबियम कल्चर तथा गैर दलहनी फसलों (ज्वार, वागरा, मक्का, जई, जौ) एजोस्पिारिलम या एजोटोवेक्टर कल्चर से बीज की बुवाई से पूर्व उपचारित करना चाहिए। सभी फसलों में फसलों में फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ाने के लिए बीजों को फास्फोरस जीवाणु कल्चर से उपचारित करें।

हरे चारे की फसलों से अधिक पैदावार के लिए खेतों को खरपतवारों से मुक्त रखे जिसके लिए 1–2 निराई गोड़ाई पर्याप्त रहती है। खरपतवार नियंत्रण के लिए खरपतवारनाशी रसायनों का भी प्रयोग किया जा सकता है। ज्वार, मक्का, बाजरा एव चरी में एट्राजीन नामक खरपतवारनाशी की 1.5 किग्रा मात्रा को 1000 ली पानी में मिलाकर प्रति हेक्टर की दर से बुवाई के तुरंत बाद स्प्रे करें। चवला, ग्वार रिजका एवं जई गर्म में बासालीन की 1.5–2.0 लीटर मात्रा अथवा पेण्डीमिथैलिन की 3.3 लीटर मात्रा को 800–1000 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टर की दर से स्प्रे करें। बासालीन को बुवाई से पहले एवं पैण्डीमिथैलिन का बुवाई के तुरंत बाद प्रयोग किया जाता है। चारा फसलों की उन्नत किस्में, बुवाई का समय एवं खाद की मात्रा का विवरण सारणी 1 में दर्शाई जा रही है।

वृक्षारोपण से चारा उत्पादन :-

वनारोपण प्राकृतिक साधनो में सबसे महत्वपूर्ण है। बजर भूमि, परती भूमि, खेत के किनारे मेड पर, गोचर भूमि एवं चारागाहों में, सड़कों, रेलों, नहरों एवं तालाबों के किनारों आदि स्थानों पर वृक्षारोपण करके चारा एवं ईंधन की उपलब्धता को बढ़ाने के साथ हवा एवं मृदा अपरदन को कम किया जा सकता है। इन वृक्षों एवं झाड़ियों से चारे की कमी के समय पशुओं को चारा मिलता है एवं तेज धूप से भी बचाव होता है। खेजड़ी एक बहुपयोगी वृक्ष है। मैदानी इलाकों में कृषि वानिकी के लिए बहुत उपयोगी वृक्ष है। इसके नीचे उगने वाली घासों एवं फसलों को नुकसान नहीं पहुंचता है। बोरड़ी चारे के लिए महत्वपूर्ण झाड़ी है, जिसको रेतीली मृदाओं में आसानी से उगाया जा सकता है। वृक्षारोपण के 5 वर्ष पश्चात 30–40 क्विंटल बेर, 15–20 क्विंटल जलाऊ लकड़ी के साथ 1–1.5 क्विंटल पाला प्राप्त किया जा सकता है। कुमट रेतीली व पथरीली दोनों प्रकार की भूमियों के लिए उपयुक्त है। अंजन पेड, नूतन व मोपेन की झाड़ियां भी चारा के लिए उत्तम है। इनके अलावा, नीम, अरडू, काला सिरस, हार्डविकीया, आदि पेड़ों की पत्तियों को भी चारे के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

चारागाह विकास :-

चारा फसलों के अलावा जहां पर सिंचाई की सुविधा न हो, भूमि फसलों के लिए उपयुक्त न हो तथा सामुदायिक गोचर पर उन्नत किस्मों की घास से चारागाह विकसित करने से पशुओं के लिए पौष्टिक चारा मिल सकता है। इसके लिए अंजन (रूदार धामण) व धामण (मोडा–धामण), सेवण, करड व ग्रामना उपयुक्त घासें है जिसको कम वर्षा में भी उगाया जा सकता है इन घासों का चारा बड़ा पौष्टिक होता है जिससे दूध उत्पादन बढ़ जाता है। वर्षा के अनुसार उपयुक्त घासें, बुवाई का समय, बीज की मात्रा का विवरण सारणी (2) में दिया जा रहा है।

चारागाह लगाने के लिए भूमि को दो–तीन बार जुताई करके समतल कर लेना चाहिए। मानसून की प्रथम वर्षा के बाद खेत में उचित नमी होने पर घासों के बीजों को छिटक कर या कतारों में बुवाई करे। पंक्तियों में बुवाई हेतु कतार से कतार की दूरी 50–75 सेमी रखें। बीजों को बुवाई के समय 1:5 के आयतन में खेत की गीली मिट्टी के साथ मिलाकर बुवाई करे। घास के बीज हल्के होते है इसलिए उन्हें ज्यादा गहराई पर न डाले तथा उनके उपर मिट्टी कम से कम आनी चाहिए। इसके अलावा इन घासों की पौध तैयार करके, पुरानी जड़ो से एवं बीजों की गोलियां बनाकर भी लगा सकते है। उबड़–खाबड़ भूमि में जहां लाइनों में बुवाई कठिन है वहां बीजों की गोलियां बनाकर बुवाई की जा सकती है। गोलियां 100–125 ग्राम बीज + 3000–3500 ग्राम काली मिट्टी + 250 ग्राम रेत + 250 ग्राम गोबर की अच्छी सड़ी–गली खाद के मिश्रण से बनाई जाती है। चारागाह लगाने के बाद वर्षा ऋतु में एक बार कल्टीवेटर से कतारों के बीच जुताई करें तथा समय–समय पर खरपतवारों को निकाल देना चाहिए जिससे घासों की उत्पादकता बनी रहती है। घासों की अच्छी वृद्धि के लिए बुवाई के समय 20 कि.ग्रा. नत्रजन एवं 20 कि. ग्राम फास्फोरस डालना चाहिए। इसके अलावा 20 कि. ग्राम नत्रजन बुवाई के एक महिने बाद बरसात होने पर छिड़काव करें। चारागाह लगने के प्रथम वर्ष में पशुओं को चरने नहीं देना चाहिए। दूसरे साल से पशुओं को चरा सकते है एवं कटाई करके भी पशुओं को घास खिला सकते है। इस प्रकार उन्नत किस्मों की घासों के चारागाह लगाने से 30–35 क्विंटल सुखा चारा प्रति हैक्टर प्राप्त हो जाता है एवं एंक बार घास लगाने से 7–8 साल तक चारा प्राप्त किया जा सकता है।

सारिणी 1

चारा उत्पादन की तकनीकियाँ

चारे की फसलें	किस्मे	बुवाई का समय	बीज दर कि ग्रा./है	उर्वरक कि.ग्रा प्रति है.		चारा प्राप्ति का समय	कटाई संख्या
				नत्रजन	फॉस्फोरस		
रिजका	आनन्द–2, टाईप–8,9, बिलाडा लोकल	अक्टूबर–नवम्बर	15–20	20	80	दिसम्बर से जुलाई	7–8
बरसीम	पूसा जायन्ट, वरदान, टी–780, टी–678 एस	अक्टूबर	25–30	20	60	नवम्बर के अन्त से अप्रैल तक	4–5
जई	केन्ट, यू.पी.ओ 94, हरियाणा जई	नवम्बर	100	60	30–40	जनवरी से मध्य मार्च तक	2
जौं	आर.डी. 2052, आ.डी. 2035	नवम्बर	100	60	40	जनवरी से मार्च तक	1
ज्वार	राज चरी 1,2, एम.पी. चरी, पूसा चरी, लीलड़ी ज्वार, सी.एस.वी. 15, सी.एस.एच.–13	मार्च–जुलाई	40	80	40	मई से अक्टूबर	2–3
बाजरा	राज. बाजरा,चरी –2, एल 74, के-599, रिजका बाजरी, एम.पी. 171	मार्च–जुलाई	12	60	40	मई से अक्टूबर	2–3
मक्का	अफ्रीकन टाल, विजय, किसान, गंगा–5	मार्च–जुलाई	50–60	75	40	मई से नवम्बर	1
कूरा	स्थानीय	मार्च–जुलाई	6–7	40	20	मई से अक्टूबर	1

सारिणी 2

चारागाह घासें एवं उत्पादन तकनीक

क्र. सं.	घास का नाम	आवश्यक वर्षा की मात्रा (मिमी)	बुवाई का समय	बीज की मात्रा कि.ग्रा/है.	दूरी (सेमी)	उर्वरक की मात्रा	चारा प्राप्ति का समय	कटाई की संख्या
1	सेवण	200–250	जून–जुलाई	6–7	50x75	40 कि.ग्रा. नत्रजन 20 कि.ग्रा. फास्फोरस	अगस्त से अक्टूबर	2
2	अंजन (रूधार धामण)	300–400	जून–जुलाई	5–6	50x50	,,	,,	2–3
3	धामण (मोड़–धामण)	300–400	जून–जुलाई	6–7	50x50	,,	,,	2–3
4	करड	400–500	जून–जुलाई	2–2.5	50x75	,,	,,	2
5	ग्रामना (ब्लू पेनिक)	200–1000	जून–जुलाई	2–2.5	50x50	40 कि.ग्रा. नत्रजन 20 कि.ग्रा.	,,	2

चारे की पौष्टिकता बढ़ाने हेतु उपचार विधियां

डॉ. आलोक चंद माथुर

गाय एवं भैंसो को केवल सूखा चारा विशेषतौर से गेहूँ का भूसा या खाखला खिलाकर स्वस्थ नहीं रखा जा सकता। खाखले जैसे चारे में पौष्टिक तत्वों का अभाव रहता है। ऐसा चारा खिलाने से शरीर में ऊर्जा एवं अन्य पोषक तत्वों की कमी आने लगती है जिससे पशु कुपोषण का शिकार होकर मृत्यु की ओर अग्रसर होने लगता है। यह स्थिति अकाल के समय रेगिस्तानी क्षेत्रों में सामान्य रूप से हो जाती हैं।

अतः पशुधन को बचाने हेतु अकाल जैसे समय में, जबकि पशु को खिलाने हेतु केवल खाखला ही उपलब्ध होता है, ऐसे सूखे चारे को उपचारित करके ही खिलाना चाहिये। चारा उपचारण के द्वारा चारे की पौष्टिकता में कई गुणा वृद्धि हो जाती है और पशु को केवल उपचारित चारे पर भी स्वस्थ रखा जा सकता है।

चारे की उपचारण विधि अत्यन्त सरल, सस्ती, एवं आसानी से अपनाने योग्य हैं।

अ. तुरंत उपयोग हेतु

10 किलो (या इसी अनुपात में) सूखे चारे/खाखले के उपचारण हेतु लगभग चार लीटर पानी में 100 से 200 ग्राम यूरिया (कृषि उपयोग हेतु रसायनिक खाद) 1/2 किलो गुड़ (रसकट, पशु–उपयोग हेतु) तथा 50 ग्राम लवण–मिश्रण (मिल्कमिन, लाइकामिन, सरस, आयुमिन आदि ट्रेड नामों से उपलब्ध) घोलकर सूखेचारे में अच्छी तरह मिला दें। मिलाने के पश्चात् तुरंत ही यह चारा पशु को खिलाया जा सकता है। इस उपचारण की लागत (प्रति दस किलो चारा) 7–11 रूपये आती है एवं इससे पशु के शरीर में सभी पौषक तत्व आवश्यक मात्रा में पहुँच जाते हैं।

ब. अन्तराल के बाद उपयोग हेतु

इस विधि से उपचार के बाद चारा पहले बताई गई विधि के मुकाबले अधिक पौष्टिक होता है परन्तु इस विधि में उपचारित करने के बाद चारे को लगभग 21 दिन तक ढक कर रखना पडता हैं।

एक क्विंटल उपचारित चारे को उपचारित करने हेतु 3–4 किलो यूरिया एवं 40–50 किलो (मौसमानुसार) पानी की आवश्यकता होती है। इस विधि में यूरिया का छिड़काव चारे की विभिन्ना परतों (3–4 या अधिक) में किया जाता है। अर्थात् उपचार करने वाले चारे की कुल मात्रा को 3–4 भागों में विभाजित कर उपचार किया जाता हैं। इस हेतु फर्श या तो पक्का होना चाहिये अन्यथा उस पर प्लास्टिक बिछा ले जिससे छिड़कने वाला यूरिया का घोल मिट्टी में न जाये।

कुल एक क्विंटल चारा उपचार करने हेतु (उदाहरण के तौर पर) पहले फर्श पर 25 किलो सूखा चारा

बिछाकर उसकी चौकड़ी बना लें। 10–12 लीटर पानी में 750 ग्राम से 1 किलो तक यूरिया घोल लें। यूरिया को घोलने हेतु किसी पेड़ की टहनी का उपयोग करें उसे हाथ से न मिलायें। इस यूरिया के घोल को चारे के ऊपर एक सार छिड़कें। इस हेतु झारे का उपयोग ज्यादा अच्छा रहता हैं। ध्यान रहे कि यह यूरिया का घोल पशुओं के लिये अत्यन्त घातक होता है अतः इस घोल को पशु को न पीने दें। छिडकाव के बाद चारे को पैरों से अच्छी तरह से दबायें जिससे चारे के बीच की हवा निकल जाये।

इस उपचारित पहली तह के ऊपर 25 किलो चारे की दूसरी तह फैला दें। इसके ऊपर फिर उसी अनुपात में यूरिया का घोल बनाकर छिडके एवं पैरों से दबायें। दूसरी तह के ऊपर इसी तरह तीसरी एवं चौथी तह बिछाकर उपचार करें। सबसे ऊपर की तह को भी अच्छी तरह पैरों से दबाकर उसके ऊपर प्लास्टिक (मेणिया) इस प्रकार ढके कि उसका निचला हिस्सा भी चारे के नीचे दब सके। इस हेतु एक से अधिक टुकड़ों या बोरियों का भी उपयोग किया जा सकता है। चारों तरफ से अच्छी तरह ढकने के बाद प्लास्टिक को पत्थर आदि से अच्छी तरह दबा दे जिससे हवा आदि से प्लास्टिक हट न सके।

इस तरह चारे को लगभग 21 दिन तक ढका रहने दे। उसके बाद प्लास्टिक कवर को एक तरफ से खोलने पर अमोनिया गैस की गंध आती है तथा उपचारित चारे का रंग भी भूरा हो जाता हैं।

आवश्यक मात्रा में चारे को बाहर निकालकर 2–3 घण्टे हवा में खुला रखे जिससे उसमें अटकी अमोनिया गैस की गंध निकल जाये। इस उपचारित चारे को सीधे पशु को खिलाया जा सकता है। हो सकता है कि हल्की गंध होने के कारण पशु इसको आरंभ में स्वीकार न करें। पशु को इसके खिलाने की आदत धीरे–धीरे डालनी पड़ती है। इस हेतु आरंभ में इसमें सादा चारा मिलाया जा सकता है जिसकी मात्रा धीरे–धीरे कम की जा सकती हैं।

इस उपचारित चारे को अधिक पौष्टिक एवं स्वादिष्ट बनाने के लिये इसमें खिलाने से पहले 5–10 प्रतिशत गुड़ तथा 0.5 प्रतिशत लवण मिश्रण पानी में घोलकर मिलाया जा सकता हैं। इस मिश्रण को खिलाने से पशु के शरीर की सभी आवश्यकतायें पूरी हो जाती हैं। इस सम्पूर्ण उपचारण का खर्चा भी एक रूपया प्रति किलोग्राम से कम ही आता हैं।

आम तौर पर मध्यम वजन की गाय 5–7 किलो एवं अधिक वजन वाली गाय या भैंस 7–10 किलो सूखा चारा खाती है। अधिक दूध देने वाले पशु को इस उपचारित चारे के अतिरिक्त दैनिक दूध की मात्रा का 30–40 प्रतिशत संतुलित दाना मिश्रण (पशु आहार) भी अवश्य खिलाना चाहिये।

साइलेज द्वारा सूखे चारे का पौष्टिकरण :–

पूरे देश में और विशेष रूप से इलाकों जैसे पश्चिमी राजस्थान आदि में न केवल पशुओं के चारे की समस्या प्रमुख है। बल्कि उपलब्ध चारा सूखा, रेशेदार और निम्न कोटी का होने के कारण पशुओं को खिलाने के उपयुक्त नहीं होता है। इस प्रकार का चारा जैसे भूसा, कडबी, खाकला, सूखी पत्तियां, घांसे, खरपतवार और फसलों के बचे हुए अन्य पदार्थ जानवरों का केवल पेट भरने का काम कर सकते हैं।

जिससे जानवरों में प्रोटीन, ऊर्जा आदि आवश्यक तत्वों की कमी ज्यों की त्यों बनी रहती है। इसी कारण गर्मियों में दुधारू पशुओं का दूध और वजन कम हो जाता है। दूसरे अकाल के समय में घास और सूखी पत्तियां भी उपलब्ध नहीं होती। इस समस्या का एक ही समाधान है। सूखे चारे का गैर परंपरागत विधि द्वारा साइलेज बनाना।

गैर परंपरागत साइलेज में न्यूनतम 13 प्रतिशत अपरिष्कृत प्रोटीन की मात्रा होती है। इससे चारा स्वादिष्ट, सुगंधित, पाचनशील हो जाता है। 40 प्रतिशत खिलाई के आधार पर दाने की खुराक में 60 प्रतिशत की कमी की जा सकती है। गाय को रोजाना 10 किग्रा खिलाकर दाने गट्टे आदि राशन के खर्च में कमी और दूध की मात्रा एवं गुणवत्ता में सुधार से पशुपालक प्रति पशु न्यूनतम 7 रू प्रतिदिन का लाभ कमा सकता है। अतिवृष्टि और अकाल के समय साईलेज जीवनरक्षक का काम करता है।

बनाने की विधि

साइलो पिट बनाना

3 फीट गहरा व 5 फीट गहरा गढ्ढा लगभग 4 क्विंटल (400 किग्रा) चारे का साइलेज बनाने के काम आता है जिससे दो दुधारू जानवर 40 प्रतिशत खिलाई के आधार पर 20 दिन तक साईलेज खा सकते हैं। साइलेज बनाते समय ध्यान देने योग्य बातें :–

1. साइलो की परिधि उसकी गहराई से कम से कम आधी होनी चाहिए।
2. साइलो की अंदरूनी दीवारें सपाट और सीधी होनी चाहिए।
3. जमीन से थोड़ी ऊपर बनाना चाहिए जिससे आसपास का पानी अंदर न जा सके।
4. साइलो खोलने के बाद कम से कम एक महिने में साइलेज उपयोग में लिया जाना चाहिए।

साइलो सीमेंट, आर.सी.सी अथवा कच्चा भी हो सकता है।

चारा तैयार करना :

सूखे चारे की 1 से डेढ़ इंच कुत्तर करनी चाहिए। इसके बाद चारे को ढाई गुना पानी में भिगोकर टंकी, पके फर्श या जमीन पर अथवा प्लास्टिक शीट पर रख दें। अगले दिन 10 प्रतिशत मोलासिसि (शीरा या गुड) तथा 2 प्रतिशत यूरिया (यानि 100 किलो सूखे चारे में 10 किलो मोलासिस और 2 किलो यूरिया) का घोल बनाकर भिगाए हुए चारे में मिला दें इसके बाद इस चारे को ठूंस–ठूंस कर साइलो में भर दें। साइलो को डेढ़ फीट ऊपर तक भर दें। ऊपर सूखा भूसा प्लास्टिक आदि रख मिट्टी से लिपाई कर सील कर दें। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि साइलों के अंदर हवा पानी नहीं जाना चाहिए। डेढ़ से 2 महिने बाद खोल कर खिलाना शुरू कर दें। आपका गैर पारंपरिक साइलेज तैयार है।

पशुओं की खिलाई :

पशुओं को उनके प्रतिदिन के आहार का 40 प्रतिशत यानि एक व्यस्क गाय को रोजाना 10 किलो साइलेज दिया जा सकता हैं। साइलो खोलने के बाद ऊपर से खराब चारा हो उसे फैंक दें। ऊपरी चारे का खराब होना साइलेज का खराब होना नहीं है और इससे घबराना नहीं चाहिए। साइलेज दूध निकालने से आधा घंटा पहले अथवा बाद में देना चाहिए। अन्यथा दूध में साइलेज की महक आ जाती है। साइलेज खिलाते समय दाना/कन्संट्रेट को 60 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है।

गैर परंपरागत साइलेज के मुख्य लाभ :

1. सूखे मौसम में साइलेज हरे चारे की कमी पूरी कर सकता है।
2. इस विधि से कम जगह में अधिक चारे का संग्रह किया जा सकता है।
3. साइलेज में 12–14 प्रतिशत प्रोटीन होता है। जिससे दूध और वसा में वृद्धि होती है।
4. अच्छी गंध होने के कारण पशु इसको ज्यादा पसंद करता है।.
5. सूखा, बाढ़, अकाल के समय साइलेज पशुओं को जीवनदान दे सकता है।

प्राथमिक पशु चिकित्सा

डॉ. आलोक चन्द माथुर

प्राथमिक पशु चिकित्सा का मतलब है आम आदमी द्वारा बीमार पशु का घरेलू उपचार जिससे कि बीमारी आगे न बढ़ सके।

बीमार पशु की पहचान

(1) बीमार पशु अन्य पशुओं से अलग सबसे पीछे चलता है।

(2) पशु की खुराक कम हो जाती है।

(3) पशु बेचैन रहता है और बार–बार उठता बैठता है।

(4) पशु के मुंह का आगे वाला काला हिस्सा सूख जाता है।

(5) पशु की आंखों और शरीर की प्राकृतिक चमक कम हो जाती है।

पशुओं की मुख्य बीमारियाँ (दो प्रकार)

(i) संक्रमित (ii) असंक्रमित

संक्रमित बीमारियाँ : एक पशु से दूसरे पशु को सीधे या पानी चारे के माध्यम से छू जाने पर हो जाती है। ये बीमारियाँ काफी पशुओं को एक साथ हो जाती है। ये विशेष मौसम (चौमासा) में होती है तथा इनसे काफी नुकसान होता है।

उदाहरणतया – मुराडा खुराडा (एफ एम डी), गला घोंटू (एच एस) गोली वाला रोग (बी क्यू)।

असंक्रमित बीमारियाँ : ये बीमारियाँ एक पशु से दूसरे पशु को नहीं फैलती जैसे पशु को दस्त लगना, कब्ज होना।

प्राथमिक पशु चिकित्सा हेतु मुख्य दवाईयां एवं उनका उपयोग

क्र.सं.	दवाई का नाम	बीमारी	खुराक	उपयोग विधि	सावधानियाँ
1	लाल दवा, पी पी.	1 खुला घाव	–	साफ शुद्ध पानी मे लाल दवा 1:1000 मिलाकर घाव को सुबह–शाम रूई द्वारा धोना/साफ करना	1.लाल दवा को नाजुक हिस्सों जैसे ऑख, नाक आदि पर न लगाये 2. लाल दवा के दानो को सीधे उंगूलियों द्वारा न उठायें बल्कि कागज के टुकडे या चम्मच से उठायें।
		2. घाव से अधिक खून बहना	–	खून बहने वाले स्थान पर रूई द्वारा सूखे पाउडर को लगाकर दबाना	
		3. जहरीला जानवर जैसे पागल कुत्ता, सॉप आदि के काटने पर		पहले काटे हुए स्थान से उपर सुतली या पतली डोरी कस कर बांधें स्थान को पानी एवं साबून से धोकर लाल दवा के कुछ दाने काटे गये स्थान पर दबा दें	
		4 भेड़ एवं बकरियों में फिड़किया होने पर		लगभग आधे कप पानी में लाल दवा के 1–2 दाने घोलकर पिला दे।	
		5. खुराड़ा–मुराड़ा होने पर मुंह एवं पावों के घाव धोने हेतु		मुँह एवं पावों के घावों को क्र.सं. 1 पर बताये गये विधि से घोल बनाकर अच्छी तरह दिन मे 2–3 बार धोवें	
2.	तारपीन का तेल	1 घाव में स्थित कीड़ों को मारने हेतु	गाय एवं भैंस 50–100एम एल मीठे तेल (250–500 एमएल) मे मिलाकर भेड–बकरी 10–15 एम एल मीठे तेल (50–100 एम एल). में मिलाकर	मीठे तेल/टिंकचर आयोडिन के साथ बराबर मात्रा मे मिलाकर रूई द्वारा घाव मे लगाना/दबाना कीड़े स्वयं बाहर आ जाने पर चिमटी द्वारा बाहर निकाले	मीठे तेल में मिलाकर ही पिलाना है

क्र.सं.	दवाई का नाम	बीमारी	खुराक	उपयोग विधि	सावधानियाँ
		2. आफरा खत्म करने हेतु		गाय–भैंस 50–100 मिली मीठे तेल 250–500 मिली में मिलाकर व भेड बकरी 10–15 मिली मीठे तेल 50–100 मिली में मिलाकर	नाल द्वारा पिलाना ।
		3. सूजे हुए अंगो पर मालिश करने हेतु			सूजन वाले स्थान पर मीठे तेल में मिलाकर मालिश करना
		4. न्यूमोनिया / नाक बहना / सदी लगना			मीठे तेल के साथ मिलाकर पसलियों पर बालों की उल्टी दिशा में मालिश करे साथ ही गर्म पानी में कुछ बुंदे डालकर भाप दे
3.	टिंकचर आयोडिन	खुला घाव		घाव पर रूई द्वारा सुबह–शाम लगाना	नाजुक अंगों जैसे ऑख पर नहीं लगाना चाहिए।
4.	टिंकचर बेनजोइन या टिकंचर फैरीसल्फ	घाव से खून बहना न्यूमोनिया, सर्दी / नाक बहना		रूई द्वारा खून बहने के स्थान पर दवा लगाना गर्म पानी में दवा मिलाकर भाप देना	अधिकतर रूई– का फाहा चिपक जाता है। उसे उखाडे नही बल्कि उस पर लाल दवा का घोल या टिंक्चर आयोडिन डालकर हल्के–हल्के हटायें।
5	पोवीडोन आयोडिन (बीटाडीन / वोकाडीन आदि)	घाव थन / उबाडा सूजने पर जल जाने से हुआ घाव		घाव पर रूई द्वारा लगायें। (थन के अंदर किसी पशु चिकित्साकर्मी द्वारा 10–15 मि.ली डलवायें। घाव पर रूई द्वारा दिन में कई बार लगायें।	
6.	आफरानाशक पाउडर	आफरा	गाय–भैंस 50 / 70 ग्राम	मीठे तेल या पानी में मिलाकर दें।	दो दिन में आफरा खत्म न

क्र.सं.	दवाई का नाम	बीमारी	खुराक	उपयोग विधि	सावधानियाँ
	(टिम्पोल आदि)		भेड़/बकरी 15/20 ग्राम सुबह–शाम 2 दिन तक दें		होने पर पशु चिकित्सक को दिखायें
7.	दस्तनाशक पाउडर (नेबलोन आदि)	दस्त एवं पेचिश	गाय/भैंस 35–50 ग्राम भेड़/बकरी 5–10 ग्राम सुबह–शाम दो दिन तक	पानी या छाछ में मिलाकर दें।	2 दिन तक फ़ायदा न होने पर पशु चिकित्सक की राय लें
8.	जेर एवं मैला गिराने हेतु पाउडर (रिप्लेण्टा आदि)	पशु के ब्याने के बाद जेर अटकना तथा/या मैला अटकना	गाय/भैंस 70 ग्राम भैड /बकरी 20–25 ग्राम सुबह–शाम 4–5 दिन तक	ब्याने के तुरन्त बाद नियम के तौर पर गुढ़ में मिलाकर दें।	प्रसव के तुरंत बाद सामान्य पशु को भी दें।
9.	ऐलबेन्डेजौल या फैनबेन्डेजोल	पेट के अन्दर विभिन्न प्रकार के आंतरिक परजीवी	गाय/भैंस 1.5 ग्राम की गोली/2 क्वींटल वजन हेतु भेड/बकरी 150 मि.ग्रा ग्राम/20 किलो वजन	गुड़/आटा/पानी में मिलाकर खिलायें	–
10	ऐक्टोमिन या सिपरोल	बाहरी परजीवियों जैसे जूं चिचडी जवा आदि पशु पर होना	1 लीटर पानी मे 1 मि.ली. दवा के हिसाब से घोल बनाकर छिड़कना	पशु के शरीर पर फुव्वारे द्वारा छिडकाव करना	हानिकारक कीटनाशक दवा के प्रयोग हेतु सभी संबंधित सावधानियां रखें
11.	नीली दवा (जैनश्यिन वायलेट)	साधारण घाव भेड़/बकरी में मुरमुरी जले का घाव		आसुत जल (डिस्टिलड वाटर) में 1% घोल बनाकर रूई द्वारा लगायें	–

गृह-वाटिका का महत्व

डॉ. (श्रीमती) अमतुल वारिस

सब्जियॉ एवं फल हमारे भोजन का अनिवार्य अंग है। ये केवल सभी प्रकार के विटामिनों एवं खनिजों का स्त्रोत ही नहीं, बल्कि मानव के लिए आवश्यक प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराते हैं। भोजन विशेषज्ञों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की सामान्य वृद्धि एवं विकास के लिए 280 ग्राम सब्जी की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। संतुलित आहार के लिए 85 ग्राम जमीन के अन्दर वाली, 110 ग्राम पत्तियों वाली सब्जियॉ एवं 85 ग्राम अन्य सब्जियॉ होनी चाहिए। किन्तु भारत में प्रति व्यक्ति सब्जी की खपत का अनुमान केवल 70 ग्राम लगाया गया है। जहॉ तक फल के उपयोग का संबंध है। इसकी स्थिति बहुत ही दयनीय है। ज्यादातर लोगो को फल की उपलब्धि "न" के बराबर होती है। खाने में सब्जी एवं फल का होना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वास्तव में हमारा उद्देश्य "अधिक सब्जी व फल उगाओ एवं अधिक संतुलित आहार पाओ" होना चाहिए।

गृह-वाटिका का महत्व :

गृह–वाटिका के आवश्यक महत्व निम्नलिखित हैं।

1. इससे ताजी सब्जियॉ तुरन्त मिलने की सुनिश्चितता रहती है।
2. गृहणियों के लिए समय का सदुपयोग एवं आनन्द का माध्यम है।
3. गृहणियों एवं बच्चों का अच्छा व्यायाम हो जाता है।
4. रसोई एवं घर के कूड़े–करकट को खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।
5. बाजार में सब्जियों की बढ़ती हुई कीमतों की वजह से, सब्जियों की खरीद पर किए गए व्यय की बचत से, व्यक्ति को सीमित आय संबंधी दबाव में कुछ राहत मिल जाती है।
6. सब्जियॉ टोकरियों, लकडी के डिब्बों, गमलों, बेकार टिनों, पोलीथिन के बेकार थैलों एवं मकानों की छतों पर सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है।
7. इसके लिए कोई कीमती कृषि यंत्र एवं औजारों की विशेष आवश्यकता नहीं होती है बल्कि साधारण घरेलू औजार ही प्रयोग में लाए जा सकते हैं। छिड़काव के लिए पुराने टिन में छेद करके इसको प्रयोग में लाया जा सकता है। काटने के लिए चौडे फल का पुराना चाकू, कीटनाशक या जीवनाशक दवा छिड़कने के लिए पुरानी स्प्रे पम्प का प्रयोग किया जा सकता है।
8. घर की सुरम्यता बढ़ती है, साथ ही साथ वातावरण में सुधार आता है।

गृह–वाटिका के लिए उचित स्थान :

1. स्थान घर के निकट होना चाहिए विशेषकर घर के आगे या पिछवाड़े तथा जानवरों से सुरक्षित हो।
2. स्थान पूर्णतया खुला एवं धूप वाला हो।
3. सब्जियों की बुआई के लिए, पानी सोख लेने वाली दोमट मिट्टी आदर्श है, यदि उसमें जैविक (आर्गेनिक) पदार्थ हो तो और भी अच्छा है। यदि मिट्टी भारी हो अर्थात कृषि कियाएं करने में असुविधा हो, तो मिट्टी की ऊपरी परत में गोबर की खाद व थोड़ी रेत मिला दें।
4. सिंचाई के लिए पानी तुरन्त उपलब्ध होना चाहिये।

गृह–वाटिका में क्या–क्या उगाए :

1. यदि आपके पास खुला प्लाट है तो उगाने वाली सब्जियों के चुनाव की कोई सीमा नहीं है। यहां तक कि कुछ फल वाले पेड़ जैसे पपीता, नींबू व बेर आदि भी उगाए जा सकते हैं। निस्संदेह फसल चयन, उपलब्ध प्लाट के आकार, सिंचाई उपलब्धता एवं इस उद्देश्य के लिए, व्यक्ति द्वारा दिये जाने वाला समय व इस कार्य पर की जाने वाली मेहनत पर निर्भर करता है।

1. ग्रीष्मकालीन सब्जियाँ :

ऐसी सब्जियाँ जिनकी सामान्य वृद्धि एवं विकास के लिये गर्म जलवायु (ठंड एवं कोहरा रहित मौसम) चाहिये, एक साल में दो बार बोयी जा सकती हैं अर्थात् फरवरी–मार्च एवं जून–जुलाई के दौरान। टमाटर, बैंगन, भिंडी, मिर्च, सेम, ककड़ी, लौकी, सीताफल, टिंडा, करेला, अरबी आदि उपयुक्त ग्रीष्मकालीन सब्जियाँ हैं।

गृह–वाटिका से भरपूर फसल कैसे ली जाए

गृह–वाटिका जिस क्षेत्र पर लगानी है उस क्षेत्र की मिट्टी उपजाऊ होनी चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि मिट्टी में कोई कार्बनिक खाद (जैसे–कम्पोस्ट) प्रयोग की जाए। इस खाद से कई लाभ होते हैं जैसे कि मिट्टी की भौतिक दशा सुधरती है व पौधों के पोषण के लिए आवश्यक सभी सूक्ष्म तत्व प्राप्त होते हैं।

कम्पोस्ट :

पौधों के अवशेष पदार्थों, घर का कूड़ा–करकट, नाली का कचरा, मलमूत्र, भूसा, कागज की रद्दी व लकड़ी की राख आदि पदार्थों के बैक्टीरिया एवं फंजाई द्वारा विशेष दशाओं में विच्छेदन से बना हुआ पदार्थ कम्पोस्ट कहलाता है। सड़ी हुई खाद प्रायः गहरे भूरे रंग की होती है। खाद तैयार करने की विधि कम्पोस्टिंग कहलाती है।

कम्पोस्ट बनाने की विधि :

गृह–वाटिका के क्षेत्रफल के आधार पर आवश्यकतानुसार उपयुक्त आकार का एक गड्ढा (लगभग 2 फीट गहरा) खोद लें। गड्ढे का फर्श एवं किनारे समतल व मजबूत कर दें। ऐसा करने से पोषक तत्वों के घुलकर बह जाने की क्षति को कम किया जा सकता है। गड्ढे को फलों एवं सब्जियों के छिलकों और मूली, शलजम, फूलगोभी आदि सब्जियों के पत्तों एवं रसोई के कूड़े–करकट से भर दें। ऐसे सामान की लगभग 12.5 से 15 से.मी. की परत होने के बाद 25 से 50 ग्राम यूरिया फैला दें और जहां तक संभव हो, कम से कम पानी का सतह पर छिड़काव कर दें। यदि गोबर आसानी से मिल जाए तो पौधों के अवशिष्ट के ऊपर 2.5 से 5.0 से.मी. मोटी गोबर की परत बिछा दें। इसी तरीके से गड्ढे की भरती जारी रखें। अंतिम परत बिछाने के बाद गड्ढे को 2.5 से 5.0 से.मी. मोटी मिट्टी की परत से ढक दें।

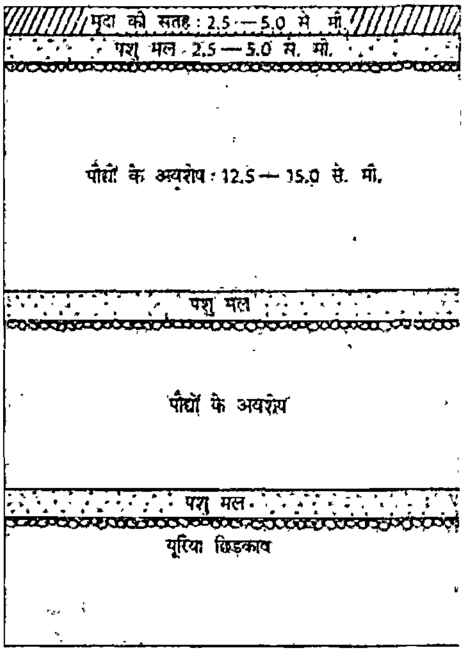

कम्पोस्ट का गड्ढा भरने का योजनाबद्ध विवरण

कम्पोस्ट गड्ढे में यूरिया मिलाने से दो उद्‌देश्य पूरे होते हैं। पहला यह कि ये जीवाणुओं के लिए ऊर्जा का कार्य करता है जिससे गड्ढे में पड़ा कूड़ा–करकट जल्दी ही सड़ जाता है और दूसरा यह कि, ये जैवीय पदार्थ को जल्दी सडाकर खाद में सिर्फ नाइट्रोजन ही नहीं बल्कि फासफोरस और गंधक जैसे पोषक तत्वों में भी वृद्धि करता है। खाद को 2–3 माह तक सड़ने देना चाहिए। इसके बाद खाद इस्तेमाल के लिए तैयार हो जाती है। गृह–वाटिका के लिए उत्तम कम्पोस्ट लगातार सुलभ हो, इसके लिए सलाह दी जाती है कि गृह–वाटिका में ही इस प्रकार के 2–3 गड्ढे या बाक्स बना लिए जाएं ताकि उनका चक्रानुक्रम में प्रयोग किया जा सकें।

3. उचित समय एवं सही तरीके से बुवाई करें। बुवाई के लिये सब्जी की किस्म के आधार पर निम्नलिखित दो पद्धतियों में से किसी एक को चुने।

(1) सीधी बुवाई :

मूली, शलजम, मेथी, पालक, खीरा, करेला, लौकी, कद्दू, टिंडा, अरबी, सेम, भिण्डी, आलू आदि सब्जियों के बीज सीधे ही बोये जाते हैं। फूलों के पौधे भी इसी पद्धति से बोये जा सकते हैं।

बुवाई पंक्तियों में करनी चाहिये तथा कतार से कतार एवं पौधे से पौधे के बीच, उचित स्थान छोड़ना चाहिये। पंक्तियों में बोने से निराई, गुड़ाई की तथा सब्जी पक जाने के बाद काटने की सुविधा रहती है। बीजों की बुआई ज्यादा गहरी नहीं होनी चाहिये एवं सूखने और चिड़ियों से बचाने के लिये मिट्टी से भली प्रकार ढक देना चाहिये।

(2) रोपाई (नर्सरी) पद्धति :

टमाटर, फूलगोभी, मिर्च, बैंगन, प्याज, लहसुन, पोदीना आदि फसलें बीज उगने के बाद, उस पौध की रोपाई से अधिक बढ़ती हैं। इसलिये ऐसी फसल के लिये बीज, उचित रूप से खाद लगी हुई क्यारियों में बोये जाते हैं। नर्सरी के लिये हल्की दोमट या बलुई भूमि सर्वोत्तम होती है। नर्सरी की 4–5 बार गुड़ाई करके मिट्टी को अच्छी प्रकार से भुरभुरा बना लेना चाहिये और यदि उपलब्ध हो तो गोबर की खाद उचित मात्रा में मिला दें। इसके बाद 15–20 से.मी. ऊंची व 1.25 से.मी. चौड़ी तथा आवश्यकतानुसार लम्बी क्यारियां बना ली जाती हैं। दो क्यारियों के बीच में 30 से.मी. चौड़ी नाली छोड़ देते हैं, जिससे कि निराई–गुड़ाई व पानी के निकास में आसानी रहती है व बुवाई के बाद क्यारियों को सूखी घास से ढक दें व अंकुरण के पश्चात हटा लें।

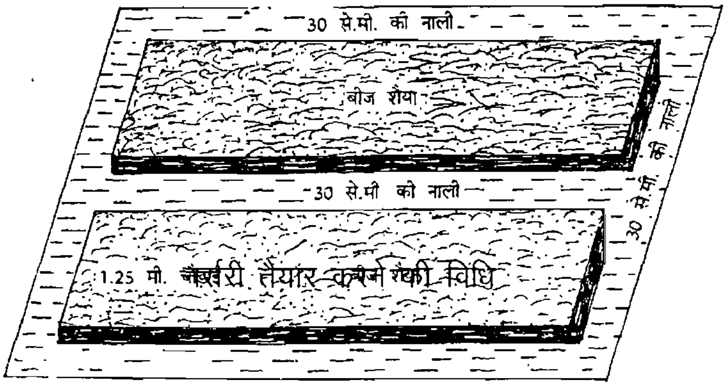

नर्सरी तैयार करने की विधि

बीज बोने के लिये कुछ निर्देश :

(क) इन्हें पंक्तियों में बोया जाये।

(ख़) छोटे बीज को बारीक रेत में मिलाकर बोएं।

(ग) बीज अधिक गहरा न बोएं। बीज को उसके आकार से दो गुनी गहराई में ही बोएं।

(घ) बीज उचित मात्रा में बोएं क्योंकि अधिक मात्रा में बोने से बीज व्यर्थ जाता है। इसे निकालने के लिए अतिरिक्त परिश्रम की आवश्यकता होती है तथा डेम्पिंग ऑफ बीमारी होने की सम्भावना रहती है।

(ड) पानी छिड़काव के लिए बारीक छेदी वाले हजारे का इस्तेमाल करें। मिट्टी को बीज तक ही नम करें। बीज बोने के बाद उसे गीले बोरे से ढकना अच्छा रहता है क्योंकि इससे नमी मिलती रहती है किन्तु अंकुरण प्रारम्भ होते ही इसे तुरन्त हटा दें।

(च) कुछ बीजों जैसे सेम, मटर व मीठी मकई आदि में चिडियों तथा चूहों का अधिक प्रकोप रहता है। अतः इन्हें एक अन्य मोटी भूसे की परत से ढक दें। किन्तु अंकुरण होने के बाद इसे हटा दें।

(छ) बीज पर फैलाने के लिए कीटाणु रहित कम्पोस्ट उत्तम रहती है।

रोपाई के लिए आवश्यक बातें :

(क) रोपाई दोपहर बाद देर से करें।

(ख) जब तक पौध लग न जाए तब तक उसे छायादार स्थान में रखें।

(ग) जहां पौधे लगाने हो उस क्यारी को पहले ही तैयार कर लें।

(घ) जो पौधे उखाड़े जाएं उनमें थोड़ी देर पहले पानी लगा दें। सबसे अच्छा यह हो, कि मिट्टी तो गीली हो जाए परन्तु पौधे सूखे रहें।

(ड) मिट्टी से निकालते समय पौधे की जड़ों को सुरक्षित रखें ।

(च) पौधों की जड़ों को प्राकृतिक रूप से फैला रहने दें उन्हें सघन न होने दें और न ही मुड़ने या उलझने दें।

(छ) यदि किसी सहारे की जरूरत हो तो जैसे ही जड़ें फैल जाएं, टेक लगा दें।

(ज) पौधों को बाएं हाथ में पकड़े और जड़े दाहिने हाथ में फैलायें।

(झ) मिट्टी के अन्तिम मिश्रण को मिलाने के बाद पौधे की जड़े मिट्टी में दबा दें।

(ञ) पौधे की सुरक्षित रोपाई के संबंध में यह है कि पौधे का मिट्टी के अन्दर वाला हिस्सा मूल मिट्टी की ऊपरी सतह तक रहना चाहिए।

(ट) रोपाई के बाद बारीक छेद वाले हजारे से आहिस्ता–आहिस्ता छिड़काव कर दें।

(ठ) रोपाई के बाद पौधे को हल्की छाया में रखें।

गृह-वाटिका में उपयोगी सब्जियाँ

डा. पी. आर. मेघवाल

हमारे भोजन को पोषक बनाने में सब्जियों का महत्वपूर्ण योगदान है क्योकि इनमे कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण, विटामीन इत्यादि प्रचुर मात्रा में पाये जाते है। सब्जियाँ हमारे भोजन का अभिन्न अंग होने के साथ–साथ खाने की मेज की शोभा भी बढ़ाती है व मनुष्य को उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करती है। सब्जियाँ स्वास्थ्यवर्धक तथा सरंक्षी पदार्थो की पूर्ति करती है।

आजकल के रसायनिक युग में बाजार से सब्जियाँ खरीद कर खाना स्वास्थ्य की दृष्टि से पूर्ण सुरक्षित नही है क्योकि इनमे कीटनाशको व अन्य रसायनो के कुछ अवशेष पाये जाते है जिसका कि हमारे स्वास्थ्य पर दीर्घ कालिक हानिकारक प्रभाव पडता है हालांकि इनके दुष्प्रभाव का तुरन्त पता नही चल पाता है। इस संदर्भ में गृह–वाटिका में सब्जियाँ उगाने का प्रमुख उद्देश्य परिवार को प्रतिदिन साफ–सुथरी रसायनिक अवशेष रहित, पौष्टिक व स्वास्थ्यवर्धक सब्जियां उपलब्ध करवाना है। इसके लिये मौसम के अनुसार वर्ष भर कुछ न कुछ सब्जियां मिलती रहनी चाहिये। अतः गृह–वाटिका के लिये सब्जियों का चुनाव इस प्रकार किया जाता है कि हर मौसम में अधिक से अधिक सब्जियां मिलती रहे। गृहणियों में गृह वाटिका लगाने की विशेष रूचि होती है क्योकि वे अनुभव करने लगी है कि गृह वाटिका से सब्जी उगाकर खाना लाभप्रद, व्यवहारिक व मन को सन्तोष प्रदान करने वाला है। इससे वे समय का सदुपयोग भी कर सकती है तथा सब्जियों के खरीदने में खर्च होने वाला पैसा भी बचा सकती है।

सब्जी व किस्म का चुनाव

गृह वाटिका के रख रखाव में गृहणियों का विशेष योगदान होता है, रखरखाव में इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिये कि सब्जी थोड़ी–थोड़ी मात्रा में उगाई जाये। साथ ही केवल वे ही सब्जियां लगाएं जो सरलतापूर्वक उगाई जा सके। यथा–संभव वाटिका मे जड़, तना, पत्ती वाली आदि प्रकार की सब्जियों का समावेश करना चाहिये जिससे सन्तुलित पोषक तत्व मिलते रहे। सर्दियों के लिये मेथी, पालक, सलाद, धनिया, बन्द गोभी, मूली और गर्मी के लिये चोलाई प्रमुख पत्ती वाली सब्जियां होती है। गृह वाटिका में यदि बरसात के मौसम में सेम का बीज बो दे तो उनकी फलिया जाड़े में भी उपलब्ध रहेंगी।

भूमि व उसकी तैयारी

उपलब्ध क्षेत्र में मिट्टी की गुणवत्ता अगर अच्छी नहीं हो तो उसमे रेत, कार्बनिक पदार्थ, चिकनी मिट्टी तथा उत्तम मृदा प्रबंध करके मिट्टी को अच्छा बनाया जा सकता है। भूमि की तैयारी उसी प्रकार की जाती है जैसे कि बड़े खेतों में की ज़ाती है। परन्तु गृह वाटिका के लिये छोटे औजारो का प्रयोग करते है। खाद उर्वरक अच्छी तरह मिलाने के बाद पानी का उपयोग व जल निकासी के अनुसार क्यारिया बना दी जाती है तथा उसमे पौध रोपण या बीजाई का कार्य तालिका में दिये अनुसार करे।

खाद एवं उर्वरक

गृह वाटिका के लिये अच्छी तरह सड़ी गली गोबर की खाद सर्वोत्तम मानी जाती है। 250 वर्ग मीटर क्षेत्र में 5 क्विन्टल गोबर की खाद अच्छी तरह मिलावे। रसायनिक खाद का भी कम मात्रा मे प्रयोग कर सकते है ।

बीज व पौध

बीज व पौध किसी विश्वसनीय नर्सरी या कृषि विश्व विद्यालय, अनुसंधान केन्द्र, निगम, कृषि विभाग या प्रसिध्द बीज कम्पनियों से ही लें। कई सब्जिया जैसे टमाटर, बैगन, मिर्ची, गोभी इत्यादि की पौध तैयार करके गृह वाटिका में प्रतिरोपित करते है यह पौध 45 से 60 दिन में तैयार हो जाती है। दूसरी सब्जिया जैसे मूली; गाजर, भिण्डी, मटर, सेम, कद्दू वर्गीय सब्जियॉ इत्यादि के बीज सीधे ही खेत या गृह वाटिका में बोये जाते है। पौध की रोपाई का कार्य शाम के समय करें। बेलदार सब्जियों को गृह वाटिका में दीवार व बाड़ के साथ बोने से उन्हे फैलने में भी आसानी रहती है, साथ ही जगह की बचत भी होती है। सब्जियो की लगातार प्राप्ति के लिये टमाटर, भिण्डी, मटर, मूली, गाजर, शलजम, बन्द गोभी आदि के बीज थोड़े–थोड़े करके कई बार में बोना चाहिये। एक ही सब्जी की विभिन्न समयों में तैयार होने वाली किस्मे उगाकर उनकी उपलब्धता काफी लम्बी अवधी तक बढ़ाई जा सकती है।

सिंचाई

गृह वाटिका में पौधो को सींचने के लिये पानी का उपलब्ध रहना अत्यन्त आवश्यक है, इसके लिये रसोईघर, बाथरूम या निवास स्थान के लगे पानी के नलों का पूर्णतया उपयोग करना चाहिये। साथ ही वर्षा ऋतु में पानी के निकास की भी व्यवस्था होनी चाहिये।

निराई–गुड़ाई

जमीन को हल्का करने व खरपतवार आदि को उखाड़ फेंकने के लिये निराई–गुड़ाई कर क्यारियों को साफ सुथरा रखें। इससे सब्जियो के पौधो की बढ़त अच्छी होगी व उपज भी अच्छी मिलेगी।

कटाई

जैसे ही सब्जियां खाने योग्य हो जाये तुरन्त तोड़ कर इस्तेमाल कर लें, ज्यादा देर तक फल/सब्जियां पौधो पर रहने से ये खाने योग्य नही रहते तथा नये फल/सब्जियो के लगने व उनकी बढ़ोतरी में बाधा उत्पन्न करते है ।

गृह वाटिका के लिये महत्वपूर्ण सब्जियाँ–उपयुक्त किस्में, बोने का समय, कटाई का समय, बीज/पौध दर, लगाने की दूरी एवं उपज

क्र. सं.	सब्जी	उपयुक्त किस्में	बोने का समय	बीज दर/पौध दर प्रति 25 व. मी.	फासला पक्तिxपौधा (से.मी.)	पकने व काटने का समय	औसत उपज प्रति क्यारी
1.	मिर्ची	मथानीयां देशी,पूसा ज्वाला	जून–जुलाई	75 पौधे	45 x 45	फरवरी मार्च	4–5 किलो
2.	बैगंन	पूसा कान्ती, पूसा अनमोल	जून–जुलाई	75 पौधे	60 x 45	नवम्बर–दिसम्बर	20–25 किलो
3.	भिण्डी	प्रभाती कान्ती अकोअनामिका वर्षा उपहार	फरवरी मार्च जून–जुलाई	50 ग्राम	45 x 30	मई–जून सितम्बर–नवम्बर	5–6 किलो
4.	मटर	आर्किल, अलाशका	अक्टूबर–नवम्बर	250 ग्राम	30 x 30	दिसम्बर–मार्च	8–10 किलो
5.	फूलगोभी	पंजाब कुवारी पूसा दीपालीस्नोबल – 16 पूसा सिन्थेटिक	मई जून सितम्बर–अक्टूबर	75 पौधे 60 पौधे	45 x 30 60 x 45	दिसम्बर–नवम्बर फरवरी–मार्च	15–20 किलो 10–12 किलो
6.	पत्तागोभी	गोल्डन एकर प्राइड आफ इन्डिया	अगस्त–सितम्बर	75–100 पौधे	45 x 45	अक्टूबर–नवम्बर	15–20 किलो
7.	टमाटर	पूसा रूबी, रोमा रूपाली, वैशाली	जून जुलाई अक्टूबर–नवम्बर	75 पौधे	60 x 45	दिसम्बर–जनवरी मार्च–अप्रेल	20–25 किलो

क्र. सं.	सब्जी	उपयुक्त किस्में	बोने का समय	बीज दर/पौध दर प्रति 25 व. मी.	फासला पक्तिxपौधा (से.मी.)	पकने व काटने का समय	औसत उपज प्रति क्यारी
8.	ककड़ी	लखनऊ अगेती अर्का शीतल	फरवरी–जुलाई	10 ग्राम	90 x 45	मई–जून सितम्बर–नवम्बर	15–20 किलो
9.	लौकी	पूसा नवीन, पूसा मेघदूत	फरवरी–मार्च	20 ग्राम	150 x 60	मई–जून	30 किलो
10.	तुरई	पूसा नसदर, कोम–1	फरवरी–मार्च	20 ग्राम	90 x 45	मई–जून	25 किलो
11.	करेला	पूसा दो मौसमी प्रिया, अरका हरित	फरवरी	20 किलो	90 x 45	मई–जून	15 किलो
12.	खीरा	पूसा सयोग, पोइन्सेट	फरवरी	15–20 ग्रम	125 x 50	मई–जून	20 किलो
13.	लोबिया	पूसा फाल्गुनी	फरवरी	200 ग्राम	125 x 50	मई–जून	10 किलो
14.	मूली	पूसा चेतकी	अगस्त–सितम्बर	20 ग्राम	30 x 10	नवम्बर–दिसम्बर	20 किलो
15.	तरबूज	शुगर बेबी, दुर्गापुरा मीठा	फरवरी	20 ग्राम	90 x 60	मई–जून	30 किलो
16.	खरबूज	दुर्गापुरा मधु, हरा मधु	फरवरी	15 ग्राम	90 x 60	मई–जून	25 किलो

गृह वाटिका में उपयोगी औषधीय पौधे

अरूण के. शर्मा

गॉवों में घर के पीछे के हिस्से मे या कभी–2 घर के आगे काफी जमीन खाली होती है और इस भूमि का उपयोग अक्सर महिलाये गृह वाटिका बनाकर उनमे सब्जी–फल आदि के पौधे लगाकर करती हैं। इससे ताजे व शुद्ध फल–सब्जी सदैव उपलब्ध होती रहती हैं। इसी गृह वाटिका में यदि कुछ जड़ी–बूटियों (औषधीय पौधे) के पौधे भी लगा दिये जायें तो उनसे कई तरह के सामान्य रोगों की घरेलू और प्राथमिक चिकित्सा संभव हो सकती है (गंभीर रोगों में डाक्टर के परामर्श की सलाह दी जाती है)। इस प्रकार के औषधीय पौधे आसानी से लगाये जा सकते है। इनमे से कुछ प्रमुख पौधे और इनके औषधीय गुण निम्न प्रकार है।

1. तुलसी : बहुत आसानी से उगने वाला पौधा है। प्रसारण बीज द्वारा होता है इसके पत्ते ही मुख्यतः औषधी के रूप में काम मे आते है।

उपयोग :

1. तुलसी की चाय या पत्तो का रस काली मिर्च के चूर्ण के साथ लेने से जुकाम, खॉसी व बुखार में आराम मिलता है।
2. दाद–खाज–खुजली में तुलसी के पत्तो को गेरू में पीसकर लेप लगाने से लाभ होता है।

2. दुद्धी (Euphorbia hirta) :- यह एक खरपतवार के रूप में या खाली पड़ी भूमि पर प्रसारी (बेल) के रूप में होता है। शाखाये कुछ उठी हुई होती है। इसका पंचाग या सम्पूर्ण पौधा औषधी के रूप मे काम आता है।

उपयोग :

इसके पंचाग का काढ़ा पुराने कफ के रोगों, श्वास, आंव व उदरशूल में लाभकारी होता है।

3. पुदीना (Mentha spicata) :- एक सुगन्धीय पौधे के रूप में जाना जाता है। इसका प्रसारण भूप्रसारी शाखाओं के द्वारा होता है। इसके पत्तो का औषधी के लिये प्रयोग किया जाता है।

उपयोग :

1. पुदीना के पत्तो के साथ अनारदाने को पीसकर सेवन करने से अतिसार (दस्त) में आराम मिलता है।
2. पत्तों का स्वरस व अदरक का रस बराबर मात्रा में मिलाकर सेवन करने से बुखार, पेट का दर्द, भूख न लगना आदि में लाभ होता है।

4. अडूसा (Adhatoda vasica) :- यह एक सदाबहार, झाड़ीदार व दुर्गन्धयुक्त पौधा होता है और खाली भूमि पर समूह में उगा हुआ पाया जाता है। प्रसारण शाखा व बीज द्वारा होता है। उपयोगी अंग पुष्प् व पत्ते होते है।

उपयोग :

1. अडूसा के पत्तो का रस शहद के साथ मिलाकर कुछ दिन तक सेवन करने से, श्वास, खॉसी व रक्तपित रोगों में लाभ होता है।
2. अडूसा की जड का रस, शहद के साथ सेवन करने से श्वेतप्रदर में आराम मिलता है।
3. गरम चाय में अडूसा के पत्तो का रस, मिश्री व थोड़ा सा काला नमक मिलाकर पीने से पुराना कफ पतला होकर निकल जाता है और पुरानी खॉसी आदि में लाभ होता है।

5. आँकड़ा (Calotropis procera) :- यह पौधा झाड़ी के रूप में शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में बहुतायत से पाया जाता है। प्रसारण शाखा व बीज से होता है। उपयोगी भाग पत्ते, जड़, फूल व छाल है।

उपयोग :

1. खुजली व चर्म रोग में आकड़े की छाल को नीबोली के तेल में घिसकर लगाने से लाभ होता है।
2. आकड़े के दूध को हल्दी के साथ तिल के तेल में उबालकर यह तेल (ठंडा होने पर) लगाने से, मोच, चोट, जोडों के दर्द में लाभ होता है।

6. अदरक (Zingiber officinale) :- इसका कंद का उपयोग नित्य भोजन के स्वाद और खुशबू बढाने में किया जाता है। इसके कंद को छायादार स्थान पर लगाकर प्रसारण किया जा सकता है।

उपयोग :

1. श्वास रोग, खॉसी व कफ रोग में अदरक का रस शहद के साथ सेवन से लाभ होता है।
2. उल्टी तथा जी मिचलाने में अदरक एवं प्याज का रस मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है। साथ ही मंदाग्नी, अरूची आदि भी कम होती है।

7. अनार या दाड़िम (Punica granatum) :- यह पौधा प्रायः सभी फल वाटिकाओं में लगाया जाता है। प्रसारण बीज व कलम से होता है। उपयोगी अंग जड़ की छाल, फल का छिलका व फल का रस है।

उपयोग :

1. जड़ की छाल को जल में उबालकर दिन में 4–6 बार पीने से फीता कृमि नष्ट होकर बाहर निकल जाते है।

2. फल के छिलके का काढा अतिसार, ऑव आदि उदर रोगों में आराम पहुँचाता है।

8. **ग्वारपाठा (Aloe barbadensis) :-** यह पौधा 1–2 फुट ऊँचा और मॉसल तने वाला होता है। इस मॉसल भाग का गूदा ही औषधी के उपयोग में आता है। इसे एलुआ कहते है। इसका प्रसारण बडे पौधे के पास निकले शिशु पौधो से होता है।

उपयोग :

1. पीलिया व पाचन शक्ति के विकारों में एलुआ का नमक व हल्दी के साथ सेवन करने से लाभ होता है। यही प्रयोग स्त्रीयों के रोगों में भी लाभप्रद होता है।
2. जलने, चमड़ी के रोग, स्तन में सूजन, व फोडे आदि में ग्वारपाठे के रस को हल्दी चूर्ण के साथ मिलाकर लेप करने से आराम मिलता है।

9. **भुई ऑवला (Phyllanthus nirmi) :-** छोटे कद का शाकीय पौधा जिसकी पत्तियॉ इमली के पत्ते के समान व शिरा के पृष्ठ भाग में राई के आकार के ऑवले जैसे फल लगे रहते है। प्रसारण बीज द्वारा होता है।

उपयोग :

1. पीलिया रोग में इस पौधे के पंचाग का रस दिन में 5–6 बार 2–2 चम्मच लेने से बहुत आराम मिलता है।
2. मलेरिया ज्वर व मूत्र विकारों में पंचाग का काढ़ा पीने से लाभ होता है।

इस प्रकार गृह वाटिका मे कुछ औषधीय पौधे लगाने से कई रोगो की प्राथमिक चिकित्सा और कई रोगों को ठीक करने में सहायता मिल सकती है।

तालिका :- **सब्जियों में उपलब्ध पोषक तत्व व औषधीय/स्वास्थय वर्धक गुण**

क्र.सं.	सब्जी	पोषक तत्व	औषधीय/स्वास्थय वर्धक गुण
1.	कद्दू	कार्बोहाईड्रेड, फासफोरस एवं विटामिन ए	अच्छा पोषक एवं विटामिन ए प्रदायक
2.	करेला	लोहा, फास्फोरस, विटामिन ए तथा सी	पेट जनित रोगों, बवासीर एवं मधुमेह रोगियों के लिये फायदेमंद
3.	कुंदरू	कैल्सियम, विटामिन ए तथा सी	ज्वर नाशक, शीतलकारी तथा पित्त रोगों मे लाभकारी
4.	खीरा	विटामिन ए तथा कैल्शियम, रेशायुक्त	जल प्रदायक, शीतलकारी, पाचक गुणोंयुक्त
5.	पालक	विटामिन ए कैल्शियम, आयरन, फासफोरस	संतुलित आहार में प्रमुख स्थान है, रक्त वर्धक, बलवर्धक
6.	ग्वारफली	प्रोटीन, आयरन, विटामिन ए	रेशे शरीर वृद्धिकारक, बलवर्धक
7.	भिंडी	कैल्शियम, फास्फोरस विटामिन ए, बी तथा सी	स्वादिष्ट, बलवर्धक, रेचक, उतेजक, वात–कफ कारक होता है
8.	गाजर	विटामिन ए सर्वाधिक विटामिन बी, सी, डी, ई, जी और के, सोडियम पोटेशियम	रतौंधी दूर करता है। कोरोटिन नामक औषधी तत्व कैंसर नियंत्रण करता है
9.	टमाटर	विटामिन ए व सी, फासफोरस, कैल्शियम, आयरन	पाचक, शीतल कारक एवं पोषक, रक्त वर्धक
10	मिर्च	विटामिन ए एवं सी, रेशा, फोसफोरस, पोटेशियम निकोटिनिक एसिड, सल्फर, केप्सइसिन	चरपराहरकारी, पाचक एवं स्वाद बढ़ाने वाला स्फूर्तिवर्धक
11	बैगन	कैल्शियम, फोस्फोरस, आयरन अल्प मात्रा में, विटामिन ए, एवम् बी	फल तीखा, गर्म, सुधावर्धक, रक्तवर्धक, पित व कफनाशक, हृदय रोग को बल देता है।
12.	फूलगोभी	विटामिन ए, आयरन, कैल्शीयम प्रचुर मात्रा में	रक्तवर्धक, सुपाच्य, शरीर को मजबूती देने वाला
13.	पत्तागोभी	विटामिन ए, सी, तथा बी समूह, कैल्शियम, फास्फोरस	अल्सर (पेट के घावों में लाभप्रद)
14.	मूली	पत्तियॉ में विटामिन ए, कैल्शियम, फास्फोरस, आयरन, जडों में गंधक, फास्फोरस	भूख बढ़ाने वाला, रक्तवर्धक, पाचक

गृहवाटिका में जल प्रबन्धन

डा० राजेश कुमार गोयल

पानी मानव जीवन की पहली जरूरत है–फिर वह चाहे स्वस्थ और जीवित रहने के लिये हो या फिर खाद्य उत्पादन और दूसरी आर्थिक गतिविधियों के लिए। बढती हुई जनसंख्या की खाद्यान्न आपूर्ति व तेजी से हो रहे औद्योगिक विकास के कारण राजस्थान में जल उपलब्धता की स्थिति दिन प्रतिदिन अत्यंत विकट होती जा रही है। राज्य के पश्चिमोत्तर भू–भाग में अन्य वैकल्पिक जल स्त्रोतों के अभाव में जल की स्थिति और भी भयावह है। थार रेगिस्तान के बहुत बड़े भू–भाग में आज भी पेयजल की उपलब्धता एक गम्भीर समस्या है। पेयजल की समस्या का सबसे अधिक सामना महिलाओं को करना पडता है क्योंकि ग्रामीण परिवेश में घरेलु जल की उपलब्धता का जिम्मा आज भी महिलाओं का माना जाता रहा है। महिलाऐं आज भी पेयजल के लिये मीलों दूर जाने के लिये विवश है व उनकी दिनचर्या का एक बहुत बडा भाग अपने परिवार को आवश्यक जल उपलब्ध कराने में लग जाता है। ऐसी स्थिति में जल का महत्व और भी बढ जाता है। कहते कि बूंद–बूंद से घड़ा भरता है यदि घर में पानी का प्रयोग मितव्ययता के साथ किया जाये तो इससे ना केवल बहुमूल्य जल, श्रम व समय की बचत होगी अपितु बचे हुये जल से अतिरिक्त आर्थिक संसाधन भी जुटाये जा सकते हैं। बचे हुये जल से अपने घर में कुछ फलदार वृक्ष या सब्जियां लगाई जा सकती हैं।

मरुभूमि में जल का एकमात्र स्त्रोत वर्षा जल है। यद्यपि यहॉ वर्षा अनिश्चित व बहुत कम होती है फिर भी यदि उपलब्ध वर्षाजल का उचित समय पर ठीक तरह से संग्रहण कर लिया जाय तो वर्षभर घरेलू उपयोग के लिये पर्याप्त जल उपलब्ध किया जा सकता है। जल संग्रहण व संरक्षण मरुभूमि के निवासियों की एक पुरानी परम्परा रही है। हाल ही में हुए तीव्र औद्योगिकीकरण व आधुनिकीकरण के नाम पर लोग इन परम्परागत तरीकों की उपेक्षा कर रहे हैं। जिससे यहॉ का जल संकट गहरा गया है। आज आवश्यकता जल के संरक्षण व इसके उचित व मितव्यय प्रयोग की है। जल संग्रहण व संरक्षण की पुरानी परम्पराओं को पुर्नजीवित करके ही जल संकट का सामना किया जा सकता है। महिलाऐं घर में जल संग्रहण व संरक्षण की कुछ आसान तकनीकों को अपनाकर जल संकट का सामना करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं व अपने परिवार के लिये आय का अतिरिक्त साधन भी जुटा सकती हैं।

1. छदिं (छत) वर्षाजल संग्रहण

भूमि में स्थित आगोर की तुलना में पक्की छतों से वर्षा जल का बहाव अधिक होता है व कम वर्षा में भी ज्यादा पानी संग्रहित किया जा सकता है। इस तकनीक के तहत छतों की नालियों का पानी एक स्थान पर एकत्रित किया जाता है व उसे सीमेन्ट या प्लास्टिक के पाइपों के द्वारा नीचे उतार कर जमीन में बने पक्के टांके में डाल दिया जाता है। चूंकि वर्षा जल प्रायः पूरी तरह से अशुद्वियों से मुक्त होता

है अतः इसका प्रयोग पेयजल आवश्यकता की पूर्ति के लिये किया जा सकता है। जिन स्थानों पर पक्के घर नहीं हो वहॉ झूंपों या झोंपडियों की छतों पर पॉलीथीन की चादर बिछा कर वर्षाजल का संचयन किया जा सकता है। बरसात के मौसम में झूंपों या झोंपडियों की छतों पर पॉलीथीन की चादर बिछाने से घर के अन्दर पानी रिसने की समस्या से भी मुक्ति मिल जाती है। एक मोटे अनुमान के अनुसार यदि

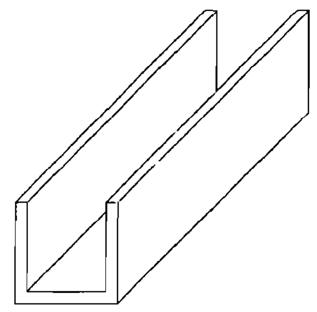

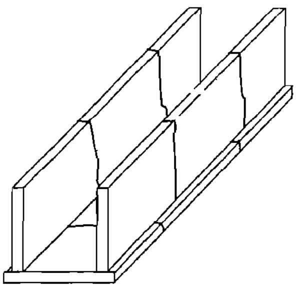

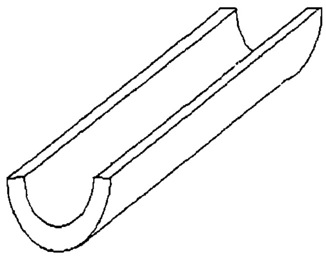

तैयार सीमेन्ट ककरीट की नाली लागत : 25 रूपये प्रति फुट गहराई ञ8 इन्च,चौडाई ञ8 इन्च	चॅापो द्वारा तैयार की गई नाली लागत 40 रूपये प्रति फुट गहराई ञ11 इन्च,चौडाई ञ7 इन्च	पाईप (चीनी मिट्टी) की नाली लागत 27 रूपये प्रति फुट गहराई ञ3 इन्च

किसी पक्की छत का माप 10 मीटर x 10 मीटर हो व इससे वर्षाजल का संचयन किया जाये तो 6 सदस्यों वाले परिवार के लिये वर्षभर पेयजल उपलब्ध कराया जा सकता है।

एक परिवार की वर्षभर की पेयजल आपूर्ति के लिये के 20 हजार लीटर क्षमता का टांका पर्याप्त होता है। परम्परागत चौकोर या आयाताकार टांकों के स्थान पर गोल, बेलनाकार टांके अधिक मजबूत होते हैं व समान क्षमता के लिये कम निर्माण सामग्री की आवश्यकता होती है। निर्माण कार्य में चूने के स्थान पर सीमेन्ट का प्रयोग करने से टांके की आयु बढ़ जाती है। उन्नत टांकों में संग्रहित जल की निकासी के लिये पारम्परिक रस्सी, बाल्टी के स्थान पर हैण्डपम्प लगाया जा सकता है। इससे न केवल जल की बचत होती है अपितु यह जल निकालने का एक सुरक्षित तरीका भी है। पक्के मकानों से छदि(छत)वर्षाजल संग्रहण व उसे इकट्ठा करने के लिये उन्नत टांका बनाने की सम्पूर्ण प्रणाली पर लगभग 20 हजार रुपया खर्चा आता है जीने का पानी एक स्थान पर एकत्रित करना व उसे सीमेन्ट या प्लास्टिक के पाइपों के द्वारा नीचे उतारना आदि शामिल है। उन्नत टांका मे संग्रहित जल का उपयोग घरेलू आवश्यकता के बाद आर्थिक रुप से लाभदायक पेड़, पौधों व पौधशाला इत्यादि के लगाने में भी किया जा सकता है। ठीक प्रकार से बनाये टांको की यदि नियमित देखभाल की जाये तो ये कई पीढियों की प्यास बुझाने के साथ साथ पर्यावरण संरक्षण व अतिरिक्त आय का स्त्रोत बन सकते हैं।

टांके की देखभाल

- साल में कम से कम एक बार टांके की सम्पूर्ण सफाई। यदि उसमें कोई दरार आदि नजर आये तो सीमेन्ट द्वारा उसका उपचार।
- वर्षा पूर्व छत या आगोर की सम्पूर्ण सफाई। यदि वर्षाजल संग्रहण भू–स्थित आगोर से किया जाये तो आगोर को एक समान ढाल व उसे दबाकर कठोर बनाना। आर्थिक क्षमता के अनुसार आगोर को सीमेन्ट कंकरीट द्वारा पक्का भी बनाया जा सकता है।
- आवक व जावक स्थान पर लगी जालियों की नियमित सफाई व जंग से बचाव के लिये रंग रोगन आदि।
- पानी में बदबू व जीवाणु आदि से बचाव के लिये वर्ष में एकबार लाल दवा व फिटकरी का प्रयोग
- टांके के तले को टूटने/फटने से बचाने के लिये टांके में कुछ पानी हमेशा रखें।

2. रसोईघर में प्रयुक्त जल का पुर्नउपयोग

एक परिवार में रसोईघर में विभिन्न कार्यो जैसे सब्जियां, दाल .चावल धोना, बर्तन साफ करना इत्यादि के लिये लगभग 25.30 लीटर पानी प्रतिदिन काम में लिया जाता है जो एकबार प्रयोग के बाद किसी भी काम में नहीं लिया जाता है। यदि इस जल का पुर्नउपयोग अन्य कार्यो जैसे गृहवाटिका में किया जाये तो पूरे वर्ष के आधार पर लगभग 10 हजार लीटर अतिरिक्त जल मिल सकेगा जिससे पूरे परिवार की गृहवाटिका की सिंचाई के लिये पर्याप्त जल उपलब्ध हो सकेगा। रसोईघर द्वारा निष्पादित जल के पुन उपयोग के लिये यह अति आवश्यक है कि रसोईघर में किये जाने वाले समस्त कार्य जैसे सब्जीयां दाल, चावल धोना, बर्तन साफ करना इत्यादि सभी कार्य पक्की सतह या फर्श पर किये जाये अन्यथा कच्चे फर्श पर कार्य करने से उपयोग के बाद का जल भूमि द्वारा सोख लिया जायेगा और पुन उपयोग के लिये कोई भी जल उपलब्ध नहीं रहेगा। अतः रसोईघर के समस्त कार्य पक्की सतह या फर्श पर किये ज़ाने चाहिये। इससे न केवल पुर्नउपयोग के लिये जल उपलब्ध हो सकेगा अपितु रसोईघर में साफ सफाई भी रहेगी।

रसोईघर में धोने, माँजनें के कार्यो के लिये पक्की सतह या फर्श बनाने हेतु एक 2 मीटर ग 2 मीटर के समतल स्थान का चयन करे और इस स्थान को पट्टियों (चॉपों) व सीमेन्ट द्वारा पक्का कर ले। यह प्लेटफार्म जमीन से थोडा उपर होना चाहिये व इसके चारों ओर एक–एक ईट की दीवार बना ले जिससे पानी बहकर बाहर न जा सके। प्लेटफार्म का ढाल एक कोने में रखे। यहाँ से विभिन्न कार्यो से निष्पादित जल को खुली नालियों के द्वारा गृहवाटिका में लगे पेड़–पौधों या सब्जियों की सिंचाई करने के लिये काम में लिया जा सकता है। धोने, माँजनें के कार्यो से निष्पादित जल, सिंचाई करने के लिये पूरी तरह सुरिक्षत व उपयुक्त है। प्लेटफार्म के निर्माण के लिये किसी विशेष प्रशिक्षित कारीगर की आवश्यकता नहीं होती है यह किसी भी साधारण कारीगर द्वारा या स्वंय भी बनाया जा सकता है।

प्लेटफार्म के निर्माण पर अधिकतम 300 से 350 रूपये खर्चा आता है जो एक बार बनने के बाद वर्षो काम आता है।

3. स्नान में प्रयुक्त जल का पुर्नउपयोग

औसतन एक व्यक्ति को अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये लगभग 25–30 लीटर जल की आवश्यकता होती है जिसमें स्नान, दॉत साफ करना, हाथ–मुँह धोना आदि शामिल हैं। एक 6 व्यक्तियों के परिवार में इस कार्य में लगभग 150 से 180 लीटर जल प्रतिदिन काम में लिया जाता है व प्रयोग के बाद निष्पादित जल को बाहर फेंक दिया जाता है। यदि इस निष्पादित जल का पुर्नउपयोग किया जाये तो वर्षभर में करीब 50 हजार लीटर अतिरिक्त जल पुर्नउपयोग के लिये उपलब्ध हो सकेगा। दैनिक आवश्यकताओं से निष्पादित जल के पुर्नउपयोग के लिये यह आवश्यक है कि यह सभी कार्य जैसे नहाना, दॉत साफ करना, हाथ–मुँह धोना आदि कार्य विभ्भिन कच्चे स्थानों पर करने की वजाह एक ही पक्के स्थान पर किये जाये। स्नान करने के लिये उपयुक्त स्थान पर 2 मीटर x 2 मीटर का एक पक्का प्लेटफार्म बनाया जा सकता है इसे पत्थरों की चिनाई द्वारा या चॉपों द्वारा या फिर किसी अन्य साधन द्वारा एक छोटे कमरे का रूप दिया जा सकता है। इससे महिलाओं, बच्चों आदि को स्नान में सुविधा रहेगी व पक्का प्लेटफार्म होने की वजह से प्रयोग के बाद निष्पादित जल का पुर्नउपयोग भी संभव है। निष्पादित जल को नालियों द्वारा अपनी गृहवाटिका में स्थापित वृक्षों की सिंचाई करने के काम में लिया जा सकता है। निष्पादित जल में यदि साबुन की मात्रा अधिक हो तो इसे रसोईघर से निष्पादित जल के साथ मिलाकर सिंचाई के काम में लिया जा सकता है। एक अन्य उपाय के रूप में स्नानघर से निष्पादित जल को नालियों द्वारा एक छोटे गड्डे में भी एकत्रित किया जा सकता है व एकत्रित जल को दूसरे दिन सब्जियों,वृक्षों आदि की सिंचाई के प्रयोग में लाया जा सकता है। निष्पादित जल को एक दिन गड्डे में रखने से उसकी अशुद्धियां कम हो जाती हैं व जल सिंचाई के लिये उपयुक्त हो जाता है।

4. कपडे धोने में प्रयुक्त जल का पुर्नउपयोग

कपडे धोने के लिये एक परिवार में औसतन 50 से 100 लीटर जल का प्रयोग किया जाता है। कपडे धोने में प्रयुक्त जल का आधे से अधिक भाग साबुन लगाने के बाद कपडों से साबुन निकालने के काम लिया जाता है। शुरू का एक बार साबुन निकालने के बाद, बाद की धुलाई में प्रयुक्त जल का पुर्नउपयोग सिंचाई के लिये किया जा सकता है। इस तकनीक द्वारा प्रतिदिन 50 से 60 लीटर अतिरिक्त जल पुर्नउपयोग के लिये उपलब्ध कराया जा सकता है। कपडे धोने से निष्पादित जल के पुर्नउपयोग के लिये यह आवश्यक है कि कपडे धोने का कार्य पूर्व में स्नान के लिये निर्मित पक्के स्थान या प्लेटफार्म पर ही किया जाये।

5. पक्के घरों में जल की मितव्ययता व पुर्नउपयोग के कुछ अन्य उपाय

पक्के घरों में कच्चे घरों की तुलना में अधिक सुविधाऐं होती फलतः वहॉ अधिक जल बचाया जा

सकता है और जल का पुर्नउपयोग किया जा सकता है। निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देने से बहुमूल्य जल के दुरूपयोग से बचा जा सकता है।

- मंजन,दाढी करते समय बाशवेसिन का नल खुला न रखें।
- घर के सभी नलों की समय –समय पर जाँच करते रहें ताकि उनसे बन्द करने पर व्यर्थ पानी न बहे।
- लॉन में पानी शाम के समय देने से पौधों को अधिक समय के लिये पानी उपलब्ध रहेगा व बार बार सिंचाई की आवश्यकता भी नहीं पडेगी।
- फर्श की पानी से धुलाई के स्थान पर झाडू द्वारा सफाई।
- टैक्टर,स्कूटर,मोटर साईकिल आदि की पाईपों द्वारा सफाई के स्थान पर बाल्टी द्वारा सफाई।
- घरों मे दैनिक प्रयोग के लिये कम पानी उपयोग करने वाले मानक उपकरणों का प्रयोग।

6 कम जल में गृहवाटिका की सिंचाई करना

घड़ा विधि

शुष्क क्षेत्रों विशेषकर अधिक रेतीली जमीन में पानी की कमी के कारण वृक्ष उगाना कठिन कार्य होता है। इस तकनीक के तहत 70 सेन्टीमीटर चौडा, 70 सेन्टीमीटर लम्बा तथा 70 सेन्टीमीटर गहरा गड्डा खोदें। प्रत्येक गड्डे में 18 किलो ग्राम सडी हुई खाद डाले और अच्छी तरह से मिला ले। घरों में काम आने वाले मिट्टी के घडे को इस गड्डे के बीचों बीच दबा दें। घडे का मुँह जमीन की उपरी सतह पर रखे। घडे को जल से उपर तक भर कर किसी कपडे या पत्थर से ढक दें। घडे के आसपास चार बीज बोएं। जब कभी भी घडे का जल स्तर कम हो घडे में जल भर दें। यह तकनीक विशेषरूप से खरबूजा,तरबूज,पेठा, काशीफल तथा जमीन में फैलने वाली बेलों को उगाने के लिए उपयोगी है।

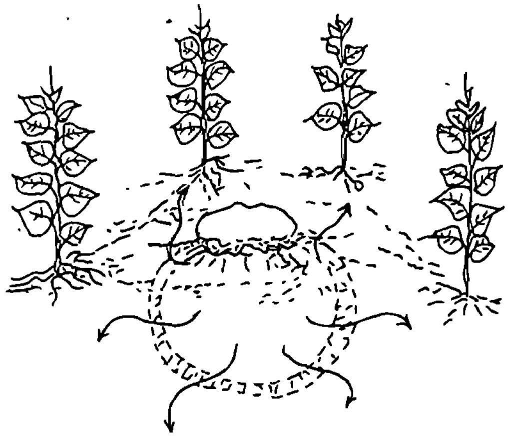

केंचुआ खाद (वर्मीकम्पोस्ट) का उत्पादन और उपयोग

अरूण के शर्मा

किसान भाई–बहिन खेत में गोबर की खाद के प्रयोग का महत्व जानते है और फसल के अनुसार वर्ष मे दो बार या दो वर्ष में एक बार इसका प्रयोग खेतों में करते हैं। किन्तु अधिकांशतः देखा जाता है कि किसी गोशाला के पास लगे गोबर के ढ़ेर से ट्राली भरकर खेत में डाल दिया जाता है। इस प्रकार बिना खाद बनाया हुआ गोबर के प्रयोग से लाभ तो शायद ही होता है, बहुमूल्य गोबर की हानि अवश्य होती है। इस प्रकार के गोबर के कई दिनो तक खुली हवा–धूप में पड़े रहने से इसके कई तत्व नष्ट हो जाते हे दूसरे इसका सड़ाव न होने से खेत में कच्चे गोबर का प्रयोग करते ही दीमक लग जाती है साथ ही यह अपघटन हेतु खेत की मृदा की नत्रेजन का उपयोग करता है जिससे फसल मे नत्रजन की कमी के लक्षण दिखाई देते हैं। एक और बड़ी समस्या खरपतवार के बीज जो कच्चे गोबर में होते है और खेत में अनुकूल वातावरण मिलते ही भंयकर समस्या बन जाते हैं। इन सभी समस्याओं से मुक्त और गोबर का सदुपयोग के लिये इसकी वैज्ञानिक विधी से खाद बनाकर उपयोग करना ही सर्वोतम उपाय है।

साधनो की उपलब्धता के अनुसार इसे दो विधियों से बनाया जा सकता है। पहली विधी को इन्दौर विधी के नाम से भी जाना जाता है इसमे गोबर व फसल अवशेष के मिश्रण को भूमि सतह से नीचे गड्ढे में भरकर 3–4 महीने ढ़ककर छोड़ दिया जाता है तथा 15–20 दिन बाद पलटते रहते हैं जिससे वायु संचार होने से सड़ाव शीघ्र होकर कम्पोस्ट खाद बन जाता है। यह विधी कम लागत की है तथा खेत का सभी व्यर्थ पदार्थ जैसे फसल अवशेष, पशु मल–मूत्र आदि का उपयोग हो जाता है। यह विधी, जल की कम उपलब्धता वाले क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है।

यदि किसी क्षेत्र में अच्छे जल की उपलब्धता ठीक हो तो एक अन्य विधी जिसमे केंचुऐ के उपयोग से खाद बनाई जाती है उसे केंचुआ खाद या वर्मीकम्पोस्ट कहते है। केंचुआ, अधसड़े जैविक पदार्थो का खाकर छोटी–2 गोलियों के रूप में मल त्याग करता है यही केंचुआ खाद है यह कम्पोस्ट खाद से कई गुना लाभकारी होती है। यह कम्पोस्ट की अपेक्षा कम समय (45–50 दिन) में बन जाती है। इसे बनाने के लिये केंचुऐ की कुछ विशेष प्रजातियों जिनमे आइसीनिया फोटिडा, इडयूलस यूजिन्न आदि का प्रयोग किया जाता है।

विधी :–

सर्वप्रथम गोबर व वनस्पति अवशेष को मिलाकर ढेर बनाकर 10–15 दिन रखा जाता है तथा प्रतिदिन पानी का छिड़काव किया जाता है ताकि इसका अंशतः अपघटन हो जाये तथा तापमान 30–35^0 सेंटीग्रेड तक घट जाये। इस अवस्था में यह मिश्रण केंचुओ के भोजन के लिये उपयुक्त होता है। अब एक 15–20 सेमी गहरी व 90–100 से मी चौड़ी खाई खोदते है। इसकी लग्बाई उपरोक्त मिश्रण की मात्रा के अनुसार तय करते है। इस खाई मे 3 सेमी मोटी, नीम, ऑकड़े के पतों की परत बिछाकर उसके ऊपर उपरोक्त मिश्रण (गोबर + फसल अवशेष) की 30–40 सेमी ऊँची परत जो ऊपर से अर्द्धगोलाकार या शंकु जैसी हो, बना देते है। इसके बाद इसमे एक मी^{2} में एक किलोग्राम (1000 केंचुऐ) की दर से केंचुऐ छोडते है

तथा बोरी या बारदाने से ढंक देते है साथ ही धूप व बरसात से बचाव के लिये छपरा या शेड भी बनाते है। बोरी व मिश्रण को 1–2 दिन बाद झारे से पानी लगाकर उपयुक्त नमी बनाये रखी जाती है।

लगभग 20 दिन बाद खाद की परत चाय की पत्ती के समान ऊपरी सतह पर दिखाई देने लगती है और सम्पूर्ण प्रक्रिया 45–50 दिन में पूरी हो जाती है तब पानी का छिड़काव बन्द कर दिया जाता है जिससे केंचुऐ नीचे चल जाते है। ऊपर की सतह की खाद चलनी में छानकर नमीयुक्त अवस्था मे ही भंडारित करी जाती है। इस प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने हेतु यह आवश्यक है कि :–

– उचित नमी व अंधेरा बनाया रखा जाये।

– सदैव आधा सड़ा व ठंडा किया हुआ जैविक पदार्थ ही केंचुऐ को भोजन में दिया जावे।

केंचुआ खाद से लाभ :–

(1) बड़े एवं सूक्ष्म जीवाणु की उपस्थिति होने की वजह से मृदा में जैविक गति विधियॉ बढ़ती है एवं उसके स्वास्थय में सुधार होता है।

(2) सभी पोषक तत्वों को आवश्यक मात्रा में एवं घुलनशील अवस्था में उपलब्ध कराती है।

(3) मिट्टी की रचना, बनावट एवं उसके रासायनिक गठन में सुधार होता है।

(4) उपयोग में आसानीः, दानेदार अवस्था (ग्रेन्युलर) में उपलब्ध एवं फसल की किसी भी अवस्था में उपयोग मे ली जा सकती है। (खेत तैयार करने के समय से फसल कटने के कुछ सप्ताह पहले तक)।

(5) जल सुधारण क्षमता होने की वजह से सिंचित क्षेत्रों में फसलों की पानी की आवश्यकता में करीब 40 प्रतिशत तक की कमी करती है एवं बारानी क्षेत्रों मे 20 से 40 प्रतिशत तक सिंचाई जल की कमी होने पर भी प्रर्याप्त उपज प्राप्त हो सकती है।

(6) कृषि उपज की गुणात्मकता (दाने का रंग, रचना, स्वाद, आकार आदि) में सुधार करती है उसकी रख–रखाव क्षमता में वृद्धि कर उसकी पोष्टिकता बढाती है।

(7) यह कम खर्च पर फसलों की उपज बढ़ाने के लिये एक बहुत ही किफायती आदान (Input) है।

(8) प्रदूषण रहित, विज्ञान द्वारा जैविक कियाओं से जैविक कचरे को सड़ा कर बनाई गई एक उतम खाद जो पौधों को सम्पूर्ण पोषण प्रदान करती है।

उपयोग की मात्रा :– 4 से 6 टन / हैक्टेयर बुवाई से पहले या गुड़ाई के साथ भूमि में मिलाकर प्रयोग करना चाहिये।

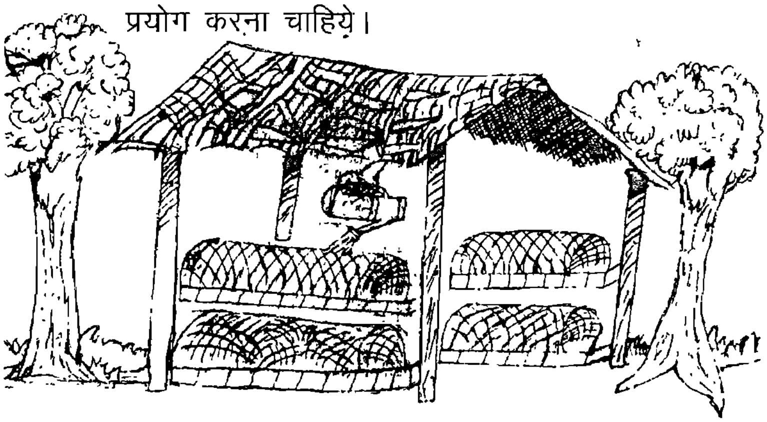

वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि

गृह वाटिका में पौध संरक्षण

डॉ. (श्रीमती) निशा पटेल

घर पर लगी हुई सब्जियॉ, ताजा, अधिक पौष्टिक व कीटनाशियो से मुक्त होती है। स्वयं की गृहवाटिका से ताजी हरी सब्जियॉ तोड़ कर पकाने व खाने का आनन्द वही लोग जानते है जिन्होंने खुद अपने घर पर फल व तरकारियों के वृक्ष/पौध लगाये हों। परन्तु कई बार बड़े उत्साह से शुरू की गई गृह वाटिका से कुछ समय उपरांत लोग निराश हो जाते है क्योंकि पौधों में कीडो व बीमारियों के कारण उपज बहुत कम या नहीं के बराबर मिल पाती है जिससे पहले की सारी मेहनत व्यर्थ सी हो जाती है। कुछ बातों का यदि शुरू से ही ध्यान रखा जाये तो गृह वाटिका में लगी सब्जियों व फल वृक्ष पर लगने वाले कीड़ो व बीमारियों से सरलता से मुक्ति पाई जा सकती है। इनमें से मुख्य हैं घर के बगीचे में स्वच्छता का ध्यान, सही खाद का उचित मात्रा में प्रयोग, गर्मियों में भूमि की गहरी निराई, गुड़ाई, अच्छे बीज का प्रयोग,रासायनिक कीटनाशियों का कम से कम उपयोग, कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं का बढ़ावा देना आदि।

स्वच्छताः

घर के बगीचे में स्वच्छता का घ्यान रखकर कीटों की समस्या से काफी हद तक बचा जा सकता है। गृह वाटिका में खरपतवार, पौधों के अवशेष, कीटग्रस्त फल, आदि में कई प्रकार के कीड़ों के अंडे, प्यूपा आदि पनपते है। बगीचे के कचरे को इकट्ठा करके उसे जला देने से इसमें स्थित कीडों की विभिन्न अवस्थाऐं भी नष्ट हो जाती है। पौधों व वृक्षों की पुरानी व कीटग्रस्त डालियों की समय समय पर काट छॉट करते रहने से तनों आदि पर लगने वाले कीड़ो से पौधों का बचाया जा सकता है। फल वृक्षों में या टिन्डा, तुरई, लौकी आदि सब्जियों में फल मक्खी से ग्रस्त फलों को भी नष्ट कर देना चाहिये। बगीचे में व उसके आसपास कई प्रकार की खरपतवांर में भी विभिन्न कीडे पलते है, जो बाद में सब्जियों या फल के पौधों को नुकसान पहुॅचाते है। इसलिये गृह वाटिका में लगने वाले जंगली पौधों को उखाड़ कर हटा देना चाहिये।

जमीन की निराई गुड़ाई

गृह वाटिका में गर्मी के दिनों में गहरी खुदाई करके उसकी मिट्टी उलट पलट करने से इसमें स्थित कीड़ों के अण्डे, प्यूपा और बीमारियों के जीवाणु तेज धूप के कारण नष्ट जाते है। कीड़ों को कई प्रकार के पक्षी आदि खा लेते है। सब्जियों में लगने वाली लटों के प्यूपा और फल मक्खियों के प्यूपा जमीन की खुदाई और मिट्टी को उलट पलट करने से खत्म हो जाते है। यदि जमीन का आकार ज्यादा न हो तो गर्मियों में जमीन को कुछ समय के लिये मोमजामे (मेंणिये) से ढक दे। इससे जमीन में स्थित अंडे, प्यूपा, फफूंद आदि समाप्त हो जायेगें।

खाद

गृह वाटिका में यदि जैविक खाद (देशी, वर्मीखाद) का प्रयोग किया जाये तो कीड़ो व बीमारियों का आक्रमण कम होगा क्योकि इस प्रकार की मिट्टी में कीटो व बीमारियों के विभिन्न प्रकार के शत्रु ज्यादा संख्या में पनपते है। वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है कि अधिक नत्रजन उपलब्ध करवाने वाली रासायनिक खाद के उपयोग से पौधो में रस चूसने वाले कीड़ो का प्रकोप ज्यादा होता है। देशी खाद के साथ नीम की खली या तुम्बा खली के प्रयोग से पौधों को अच्छी खाद तो मिलती ही है साथ में भूमि में स्थित कीड़ो और जड़ों में गॉठ बनाने वाली सूत्र कृमि की समस्या से काफी हद तक छुटकारा मिलता है।

नीम का कीटनाशी के रूप में प्रयोगः

नीम के वृक्ष प्रायः हर गॉव में होते है। नीम की पत्तियों व बीज में नैसर्गिक रूप से कई कीटनाशी होते है। नीम आसानी से उपलब्ध होने वाला सस्ता, सुरक्षित व दुष्प्रभावों से मुक्त कीटनाशी है। इसका प्रयोग कीटनाशी के रूप में काफी समय से किया जा रहा है। गृह वाटिका में पनपने वाले कई प्रकार के कीडो का नियंत्राण नीम के कीटनाशी द्वारा किया जा सकता है। इस कीटनाशी से कीट भोजन करना कम या बंद कर देते है, उनकी प्रजनन क्षमता कम हो जाती है और इसके असर से कई कीड़े मर भी जाते है।

नीम से कीटनाशी बड़ी सरलता पूर्वक बनाया जा सकता है। गर्मियों में नीम के पेड़ के नीचे गिरी हुई पकी निबौलियॉ एकत्रित कर लें। इन्हे ऐसे पात्रों में रखें जिसमें इन्हें पर्याप्त हवा मिले ताकि इन पर फफूंद न लग सके। 1–2 दिन इन निबौलियों को पानी से भरे बर्तन आदि में रखें। उसके बाद हाथ से मसल कर निबौलियों का छिलका व गूदा हटा दें। नीम के बीज को अच्छी तरह से सूखा लें और सूखे हवादार स्थान पर रखें। बीज का छिलका हटाने के लिये इन्हे हमामदस्ते में डालकर हलका हलका कूट लें। अब जो बीज की की गिरी प्राप्त हुई है उसे कूट कर पाउडर बना लें। जब भी आपको कीटनाशी घोल बनाना हो तो 10 लीटर पानी में 500 ग्राम पाउडर अच्छी तरह मिलायें व रात भर रखें। सुबह पुनः अच्छी तरह हिला कर पतले कपड़े से छान लें। यदि आपके पास हाथ वाला स्प्रेयर हो तो घोल उसमें भर ले अन्यथा सींक वाली झाडू से भी इस घोल को पौधों पर छिड़का जा सकता है। आमतौर पर 5 प्रतिशत घोल (यानि 500 ग्राम नीम के बीज की गिरी का पाउडर 10 लीटर पानी में) कई प्रकार के कीड़े जैसे हरा तेला, मोयला, फल छेदक, पत्ती में सुरंग बनाने वाले कीट आदि का नियंत्राण करने में सफल रहता है। इस घोल का छिड़काव 7 दिन के अन्तराल पर दोहरायें।

विभिन्न सब्जियों में लगने वाले कीट व उनका नियंत्रण

राजस्थान में गृहवाटिका में आमतौर पर लगाई जाने वाली सब्जियॉ है : लौकी, तुरइ, टिण्डा, सेमफली, बैंगन, चन्दलई, मिर्च, टमाटर, लहसुन, प्याज आदि कुष्मांड कुल की सब्जियों (लौकी, तुरई, टिण्डी, करेला, ककड़ी आदि) में पाये जाने वाले प्रमुख कीट है : लाल भृंग, फल मक्खी, चेपा, बरूथी

आदि इन कीटों की समस्या से बचने के लिये प्रमुख उपाय है, वाटिका में हर साल भिन्न भिन्न सब्जियॉ लगाना ताकि कीटों के जीवन चक्र पूर्ण न हो सके। पत्तियॉ खाने वाले कीड़ों के नुकसान को रोकने के लिये नीम के घोल का छिड़काव 8–10 दिन के अंतराल से करना चाहिये। फल मक्खी के प्रकोप से फल काणे हो जाते है। इसके नियंत्राण के लिये कीटग्रस्त फल को नष्ट करना, वाटिका की मिट्टी को समय समय पर उलट पलट करना, आदि। पानी शक्कर का घोल बना कर उसमें थोड़ी मात्राा में मैलाथियान मिलाकर किसी छोटे पात्र में गृहवाटिका में 2–4 स्थान पर रखने से फल मक्खियों के नियंत्रण में मदद मिलती है। प्रतिलीटर पानी में 1 मि.ली. मैलाथियान मिलाकर छिड़काव करके फल मक्खी के प्रकोप को रोका जा सकता है।

बैंगन के पौधों पर आक्रमण करने वाले कीट हैं : रस चूसने वाल, पत्तियॉ खाने वाले और फल व तना छेदक। रस चूसने वाले कीड़े हरा तेला, मोयला, सफेद मक्खी आदि पत्तियों की निचली सतह या कोमल भागो से रस चूसकर पौधो को कमजोर कर देते हैं जिससे उपज कम होती है। इसके नियंत्रण के लिये नीम कीटनाशी (5 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव करें। फल/तना छेदक कीट की लट के प्रकोप से बैंगन के पौधे की बढ़ती हुई शाखाएँ मुरझा जाती हैं और फलों में छेद हो जाते है। नियंत्रण के लिये प्रभावित शाखाओं को तोड़कर जला देना चाहिये। इसी प्रकार पत्तियॉ खाने वाले कीड़ों के अण्डे व लटों से प्रभावित पत्तियों को हटाने से गृहवाटिका में इनकी समस्या कम होती है। कीडों के जीवन चक्र का क्रम तोड़ने के लिये बगीचे में एक बार बैंगन लगाने के बाद कुछ समय तक दोबारा बैंगन नही लगाना चाहिये।

टमाटर में मुख्य रूप से फल छेदक, रस चूसने वाले कीट और जड़ों में गाठें बनाने वाली सूत्र कृमि का प्रकोप होता है। टमाटर के पौधों के बीच बीच में कुछ हजारा (गेन्दा) के पौधे लगाने से टमाटर में सूत्र कृमि की समस्या से काफी हद तक छुटकारा मिलता है। गेन्दा के पौधों पर फल छेदक कीट अण्डे पहले देते है। कीटों के अण्डे सहित इन पौधों को नष्ट करके टमाटर को फल छेदक से बचाया जा सकता है।

भिण्डी में लगने वाले प्रमुख कीड़े हैं : फल छेदक व रस चूसने वाले कीट। इनके प्रकोप से बचने के लिये नीम कीटनाशी घोल (5 प्रतिशत) का शुरू की अवस्था में छिड़काव करना चाहिए। यदि कीडों की समस्या ज्यादा हो तो मैलाथियान या एन्डोसलफान का छिड़काव (1 मि. ली. प्रति लीटर पानी की दर से) करना चाहिये। रसायनिक उर्वरकों का उपयोग अधिक होने से चूसने वाले कीडों का प्रकोप ज्यादा होता है।

गृह वाटिका के फल वृक्षो में कीट नियंत्रण

बेर, अनार, ऑवला व गून्दा पश्चिमी राजस्थान में गृह कटिकाओं में लगने वाले प्रमुख फल है। फल वृक्षों में कीड़ों की समस्या से बचने के कुछ सरल उपाय है :– पेड़ों की शाखाओं की समय समय पर कॅटाई, छंटाई, फल वृक्षों के नीचे नियमित निराई गुड़ाई, कीट प्रभावित फल डालियों को एकत्रित करके

नष्ट करना आदि। फूल आने व फल बनने के समय नीम कीटनाशी घोल के छिड़काव से फल मक्खी या फल बेधक की समस्या का नियंत्रण किया जा सकता है।

बेर में लगने वाले प्रमुख कीट है फल मक्खी, चेफर बीरल, छाल भक्षक कीट आदि।

फल मक्खी : बेर का सबसे हानिकारक कीट है जिसके प्रभाव से फल काणे हो जाते है। इस कीट का आक्रमण जब फल छोटे होते है तभी शुरू हो जाता है। फल मक्खी की लटे फल को अन्दर से पूरा खा जाती है और इनके मल एवं बेक्टिरिया आदि से फल सड़ जाता है। लटें बड़ी होने के बाद फल से बाहर आ जाती है व मिट्टी में प्यूपा बनाकर छिप कर रहती है। कुछ समय बाद ये पुनः मक्खियॉ बन कर फलों पर आक्रमण शुरू कर देती है। बचाव व नियंत्रण के लिये बगीचे के आस पास लगी बेर की जंगली झाड़ियॉ को हटा दें। प्रभावित फलों को एकत्रित करके नष्ट कर दें। गर्मियों में (मई–जून) में बगीचे की मिट्टी को उलट–पलट करते रहे।

बेर के पौधों में जिस समय अधिकांश फल मटर के दाने के आकार के बनने लगे तब उस समय मोनोक्रोटोफास 36 एस एल एक मिली लीटर या एन्डोसल्फान 35 ई सी 1 मिली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें। दूसरा छिड़काव इसके 15–20 दिन बाद करें।

बेर में छालभक्षक तने में सुरंग बनाकर रहता है। इसके प्रकोप से पूरी शाखाएं सूख कर गिर जाती हैं। इसे खत्म करने के लिये सुरंग के मुहॅ पर से कचरा आदि हटाकर एक लोहे के तार की सहायता से लट को मारा जा सकता है। कैरोसिन से गीला किया हुआ रूई का फाहा अन्दर डाल कर सुरंग का मुहॅ बन्द कर देना चाहिये। बेर के पत्ते खाने वाले रात्रिचर कीड़ों को पेड़ की शाखाऍ हिलाकर नीचे गिरा कर इकट्ठा करके मारा जा सकता है।

कीट नाशी के प्रयोग में सावधानियॉ :

1. गृह वाटिका में रासायनिक कीटनाशियों का प्रयोग कम से कम ही करें।
2. दवाई निर्धारित मात्रा में ही डालें।
3. मुॅह पर कपड़ा बॉध कर छिड़काव करें।
4. कीटनाशी बच्चों व घरेलु पशु पक्षियों की पहुॅच से दूर रखें।
5. कीट नाशियों का छिड़काव करते समय हवा की दिशा की ओर छिड़काव करें।
6. छिड़काव सुबह जल्दी या फिर शाम को करने से ज्यादा असर होता है व मित्र कीट, मधुमक्खी आदि से बचे रहते हैं।
7. कीटनाशी के खाली डिब्बे, शीशी आदि का अन्य किसी वस्तु को रखने के लिये इस्तेमाल न करें। खाली डिब्बे आदि नष्ट कर दें। जमीन में गाड़ दें।
8. दवा के छिड़काव के बाद तुरन्त फल/सब्जियों का प्रयोग नही करें। 10–12 दिन बाद ही फल सब्जियों का उपयोग करें।

खाद्य परिरक्षण द्वारा आय उपार्जन

डा. (श्रीमती) अमतुल वारिस एवं (श्रीमती) सविता सिंघल

फल और सब्जियां विटामिन, खनिज व अन्य तत्त्वों के स्त्रोत हैं, जो अच्छे स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य हैं। फलों और सब्जियों में मिलने वाले रेशे हमारे शरीर के अपशिष्ट को निकालने, कोलेस्ट्रोल को खत्म करने और कुछ कार्सिनोजेनिक मिश्रणों को समाप्त करने में सहायता करता है।

फल और सब्जियों को संरक्षी खाद्य कहा जाता है। हमारे शरीर को जीवन की विभिन्न महत्वपूर्ण क्रियाओं को करने और रक्त बनाने, हड्डियों और दांतों के लिए विटामिनों और खनिजों की आवश्यकता होती है। विभिन्न शारीरिक कार्यो को विनियमित करने के लिए ये विटामिन और खनिज बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। यद्यपि इनकी थोड़ी सी मात्रा की ही आवश्यकता होती है। इनमें से बहुत से खनिज और विटामिन फलों और सब्जियों द्वारा प्राप्त होते हैं।

फलों और सब्जियों द्वारा उपलब्ध कराए गए पौष्टिक तत्व हैं – विटामिन 'ए' (बीटा केरोटिन के रूप में), विटामिन 'सी', 'बी काम्पलेक्स' वर्ग के विटामिन, विशेषकर रिबोफ्लेविन व फोलिक एसिड तथा आयरन व कैल्शियम जैसे खनिज। आलू, जिमीकन्द व अरबी जैसी जड़ वाली सब्जियां शरीर को शक्ति देती हैं। सभी फल व सब्जियां रेशे प्रदान करते हैं जिनमें बहुत से स्वास्थ्यवर्धक गुण हैं।

फल एवं सब्जियों का उत्पादन मौसम के अनुसार होता है जिससे वर्ष भर हर फल व सब्जी उपयोग हेतु उपलब्ध नहीं होती। चूंकि वर्ष के किसी खास मौसम में अधिक फल व सब्जी का उत्पादन होता है, अतः बाजार में उनकी कीमत भी कम प्राप्त होती है तथा यदि इनका समय पर उपयोग नहीं किया जाय तो ये खराब भी हो जाती है। इस समय इन्हें यदि परिरक्षित कर लिया जाय तो पूरे वर्ष हम इनका उपयोग कर सकते हैं।

खाद्य पदार्थों को खराब करने में जीवाणुओं का विशेष महत्व है। खाद्य पदार्थो में उपस्थित नमी एवं खाद्य अवयव जीवाणुओं की वृद्धि हेतु सुलभ होते हैं। उचित तापक्रम मिलने पर इन जीवाणुओं की अत्यधिक वृद्धि होती है जिससे खाद्य पदार्थ जल्दी खराब हो जाते हैं। यदि खाद्य पदार्थ के परिरक्षण के दौरान नमी, तापक्रम अथवा हवा की उपलब्धता में कमी कर दी जाय तो जीवाणु जीवित या सक्रिय नहीं हो पाते जिससे खाद्य पदार्थ अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

परिरक्षण की विधियाँ

फल–सब्जी का परिरक्षण मुख्यतः तीन प्रकार से किया जा सकता है –

1. सुखाकर
2. चीनी द्वारा
3. नमक व तेल द्वारा

सुखाकर परिरक्षण : खाद्य पदार्थ में उपस्थित नमी को सुखाकर कम कर दिया जाय तो उसे अधिक समय तक परिरक्षित किया जा सकता है। इस विधि में पहले सब्जी को ब्लांच किया जाता है जिससे उसमें उपस्थित जीवाणु एवं एन्जाइम निष्क्रिय हो जाते हैं। फिर उसे धूप या छांव में सुखा दिया जाता है। ब्लांचिंग में कटी हुई सब्जी को एक कपड़े में बांधकर उबलते हुए पानी में कुछ समय के लिए रखा जाता है।

सब्जियों के प्रकार के अनुसार उनको सुखाने हेतु की गई प्रारम्भिक तैयारी, उपचार तथा तापक्रम भिन्न–भिन्न होते हैं।

चीनीं द्वारा परिरक्षण : यदि किसी खाद्य पदार्थ में चीनी की मात्रा 45 प्रतिशत या इससे अधिक होती है तो उस पदार्थ में जीवाणु पनप नहीं पाते जिससे उसे अधिक समय तक परिरक्षित किया जा सकता है। जैसे जैली, मुरब्बा, शर्बत, पेय आदि खाद्य पदार्थ चीनी द्वारा परिरक्षित किये जाते हैं।

नमक व तेल द्वारा परिरक्षण

कच्चे फलों एवं सब्जियों को मसालों के साथ मिलाकर तेल में डूबोकर रखने से भी उन्हें परिरक्षित किया जा सकता है। इस प्रकार से बनाये गये पदार्थों में विभिन्न प्रकार के आचार सर्वोत्तम उदाहरण हैं। इनके अलावा मटर के दानों, मशरूम आदि को नमक के घोल में रखकर परिरक्षित किया जाता है।

अचार बनाकर सब्जियों का परिरक्षण

नमक, तेल तथा सिरके द्वारा खाद्य पदार्थों का संरक्षण ही अचार बनाने की कला है। मौसम के अनुरूप सब्जियां सस्ती एवं बहुतायत से होती है जैसे सर्दियों में आंवला, मिर्च, गोभी, गाजर मटर आदि तथा गर्मियों में कैर, कैरी, गून्दा इत्यादि।

प्रस्तुत लेख में सब्जियों के अचार बनाने की विधि की जानकारी दी जा रही है जो कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में रहने वाली महिलाओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

अचार बनाने से पहले कुछ आवश्यक जान्कारी

1. अचार प्लास्टिक के बर्तन में नहीं रखना चाहिए।
2. अचार बनाने के बाद तीन दिन तक धूप में अवश्य रखें।
3. तेल की एक तह अचार की ऊपरी सतह तक होनी चाहिएं।
4. बिना तेल के अचार में नमक 20 प्रतिशत अवश्य होना चाहिए।
5. यदि अचार कहीं बाहर भेजना हो तो 0.5 ग्राम सोडियम बेंजोएट/किग्रा तैयार अचार में अवश्य डालना चाहिए।

अचार के समान्य मसाले निम्न हैं।

प्रतिकिलोग्राम सब्जी हेतु मसाले

तैयार सब्जी 1 किग्रा, नमक आवश्यकतानुसार, हल्दी 15 ग्राम, पिसी लाल मिर्च 20 ग्राम, गर्ममसाला 15 ग्राम, पिसी राई – 50 ग्राम, दरदरी सौफ – 25 ग्राम, एसिटीक एसिड 10 मिली, सरसों का तेल 400 ग्राम।

नोट: जिन सब्जियो में मसाला भरने के लिए तैयार किया जाता है उनमें उपरोक्त मसालों के अलावा निम्न मसाले बढ़ा देते हैं।

खटाई – 100 ग्राम, राई – 50 ग्राम, सौंफ – 25 ग्राम

1. नींबू का अचार

नींबू 1 किलो, नमक 200 ग्राम, लाल मिर्च 40 ग्राम, दरदरी दानामेथी 20 ग्राम, सौंफ 15 ग्राम, किरायता 10 ग्राम, हल्दी 15 ग्राम।

विधि :-

1. अच्छे किस्म के नींबुओं को धोकर, पोंछकर, चार टुकड़ों में इस प्रकार कांटे की नीचे का हिस्सा जुड़ा रहे।
2. नींबूओं को निचोड़कर आधा रस निकालें।
3. उपरोक्त मसालों को मिलाकर, नींबूओं में ठसा कर भरें एवं नींबूओं को साफ एवं सूखी भरनी में डालती जाएं।
4. निकाले हुए रस को छानकर भरनी में डाल दें।
5. भरनी पर पतला (मलमल) कपड़ा बांधकर एक सप्ताह के लिए धूप में रखें।

2. कैर का अचार :-

कैर 1 किलो, नमक 15 ग्राम, लाल मिर्च 25 ग्राम, गर्ममसाला 10 ग्राम, राई 75 ग्राम, सौंफ 50 ग्राम, अमचूर –50 ग्राम, तेल 400 ग्राम।

विधि :-

1. कैर के ऊपर के डंठल तोड़कर 5–6 दिन छाछ में भिगोकर रखें ताकि इसका कसैलापन निकल जाए।
2. साफ पानी से धोकर किसी कपडे पर फैलाकर पानी सुखा लें।

3. एक बर्तन में कैर लेकर उसमें उपरोक्त सभी मसाले मिलालें।

4. तेल गर्म करके फिर ठंडा करके अचार में डाल दें।

5. साफ एवं सूखी भरनी में भरकर 2–3 दिन धूप में रखें।

3. कैरी का बिना तेल वाला अचार

कैरी साफ की हुई 1 किलो, नमक 200 ग्राम, हींग 1 तोला, लाल मिर्च 50–100 ग्राम

विधि :–

1. केरी को छीलकर छोटे–छोटे टुकड़ों में कांटे।

2. हींग को पीसकर सभी मसाले कैरी में मिला दें।

3. मर्तबान में भरकर 2–3 दिन धूप मे रखें।

4. गूंदे (लसोड़े) का अचार

गूंदे 1 किलो, नमक 150 ग्राम, हल्दी 20 ग्राम, गर्म मसाला 20 ग्राम, पिसीराई – 50 ग्राम, अमचूर 100 ग्राम, लाल मिर्च 40 ग्राम, एसीटीक एसिड 15 मिली, तेल 300 ग्राम

विधि :–

1. गूंदों को डण्ठल से अलग करके 15 मिनट तक गर्म पानी में उबाले (तब तक रंग ना बदले)

2. इसके पश्चात गूंदो को ठंडे पानी में डालें।

3. गुठली निकालकर गूंदों को कपड़े पर फैला दें।

4. 1–2 घण्टे बाद जब गूंदों का पानी सूख जाए तब सभी मसाले एवं एसीटीक एसिड मिलाकर गूंदों में दबादबा कर भरें।

5. अब तेल गर्म करके ठंडा करें एवं बरनी में डाल दें।

5. आंवले का अचार :–

आंवला – 1 किलो, नमक 150 ग्राम, लाल मिर्च 25 ग्राम, हल्दी 15 ग्राम, सौंफ दरदरी 25 ग्राम, किरायता 20 ग्राम, गरम मसाला 15 ग्राम, पिसी राई 50 ग्राम, सरसों का तेल 400 ग्राम, एसीटीक एसिड 10 मिली।

विधि :–

1. आंवलों को उबालकर, दबाकर गुठली निकालें।

2. उपरोक्त सभी मसाले आंवलें में मिला दें।

3. तेल को गर्म करके ठण्ड करें एवं आंवले में मिला दें।

6. सब्जियों का मिश्रित अचार :–

फूल गोभी –250 ग्राम, शलजम 250 ग्राम, गाजर 250 ग्राम, हरीमिर्च 250 ग्राम, मटर के दाने 250 ग्राम, प्याज 200 ग्राम, अदरक 100 ग्राम, हल्दी 20 ग्राम, नमक 130 ग्राम, लाल मिर्च 20 ग्राम, गरम मसाला 15 ग्राम, राई 75 ग्राम। सौंफ 35 ग्राम, इमली 75 ग्राम, गुड़ 150 ग्राम, एसीटीक एसिड 15 मिली, सरसों का तेल 400 मिली।

विधि :–

1. तैयार कटी गोभी, गाजार शलजम एवं मटर के दानों को 6–7 मिनट पानी में उबालकर तुरंत ठंडे में रखे तथा करीब आधा घंटे के लिए धूप में सुखा दें।
2. इमली तथा गुड़ को एक गिलास पानी में गर्म करके छलनी द्वारा छान ले।
3. तेल को गर्म करके कटी प्याज को भूने, तथा प्याज भूननें के बाद इमली गुड़ के तैयार घोल को तेल के साथ थोड़ी देर गर्म करें।
4. अब उबली एवं बिना उबली सब्जियां (कटी अदरक व मिर्च) नमक एवं सभी पिसे मसालों को अचार में मिला दें।
5. गैस से उतारकर एसिटीक एसिड डालें।

7. सांगरी का अचार

सांगरी 1 किलो, नमक 125 ग्राम, पिसी लाल मिर्च 25 ग्राम, हल्दी 15 ग्राम, अमचूर 50 ग्राम, दरदरी दानामेथी 25 ग्राम, सरसों का तेल 300 ग्राम, एसीटीक एसिड 10 मिली।

विधि :–

1. कच्ची तथा ताजा सांगरियों को टुकड़े करके गर्म पानी में 5 मिनट के लिए उबालकर 1 घंटे के लिए धूप में सुखाएं।
2. सांगरी में सभी मसाले मिलाकर बरनी मे भर दें।
3. तेल गर्म करके ठंडा करें तथा अचार में डालकर एसीटीक एसिड मिलाए तथा बरनी मे भरे।

इस प्रकार घर बैठकर महिलाएं अचार बनाकर अपनी आय बढ़ा सकती हैं तथा उपरोक्त अचार सस्ते एवं फायदेमंद भी हैं।